प्रारम्भिक-पाणिनीयम्

[परमलघुसिद्धान्तकौमुदी]

विश्वनाथशास्त्री 'प्रभाकरः'

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली वाराणसी पटना बंगलौर मद्रास

प्रारम्भिक-पाणिनीयम्

[परमलघुसिद्धान्तकौमुदी]

संस्कृत-प्रारम्भिकश्रेणिस्थ-विद्यार्थिनां कृते सर्वतः प्रथम-पठनीयं
पाणिनीय-व्याकरणम्

सूत्रभाषार्थसहितम्

सङ्कलयिता
विश्वनाथशास्त्री 'प्रभाकरः'

सहकारी सङ्कलयिता
निगमानन्दशास्त्री विद्यालङ्कारो हिन्दीप्रभाकरः

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली वाराणसी पटना बंगलौर मद्रास

पुनर्मुद्रण : १९८५, १९९०, १९९१

बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली ११० ००७
१२० रॉयपेट्टा हाई रोड, मैलापुर, मद्रास ६०० ००४
१६ सेन्ट मार्क्स रोड, बंगलोर ५६० ००१
अशोक राजपथ, पटना ८०० ००४
चौक, वाराणसी २२१ ००१

मूल्य : रु० १०

नरेन्द्रप्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली ११० ००७ द्वारा प्रकाशित तथा जैनेन्द्रप्रकाश जैन, श्री जैनेन्द्र प्रेस, ए-४५ नारायणा, फेज-१, नई दिल्ली ११० ०२८ द्वारा मुद्रित

प्रारम्भिक पाणिनीय

दो शब्द

किसी भी भाषाकी शिक्षा व्याकरणके बिना अधूरी रहती है। संस्कृत भाषाका तो अध्ययन ही व्याकरण-प्रधान होता है; जबकि दूसरी सभी भाषाओं का अध्ययन साहित्य-प्रधान ही चलता है। व्याकरण-प्रधान अध्ययन ने ही संस्कृत भाषाको परिपूर्ण शुद्ध और अविकल रूपमें आज तक सुरक्षित रख छोड़ा है। संस्कृत व्याकरणों में पाणिनीय-व्याकरण का स्थान सबसे ऊँचा है, यतः—यह व्याकरण सर्वाङ्ग-पूर्ण सर्वाङ्गसुन्दर और पूर्ण-परिमार्जित प्रमाणित हुआ है। पाणिनीय-व्याकरण का मूलभूत ग्रन्थ है "अष्टाध्यायी"। यह प्राचीन अनुशासन प्रणालीका ग्रन्थ है, पूर्वकाल में सबसे पहले इसी ग्रन्थ को पढ़ते थे, समस्त पुस्तक कण्ठस्थ कर लेने के अनन्तर शब्दसाधन आरम्भ किया जाता था, एक शब्द की सिद्धि के लिए सारी अष्टाध्यायी की छानबीन करनी होती थी। विद्यार्थियों के लिए इस प्रणाली में कष्ट अनुभव किया गया, तब प्रक्रिया-प्रधान नवीन प्रणाली का आविर्भाव हुआ।

पूर्व प्रणाली

मूल से न चलकर चूल से चलना आरम्भ हुआ—आवश्यक संज्ञाप्रकरण रख कर वाक्य-विशकलन के लिए संधिप्रकरण को सर्वप्रथम स्थान दिया गया; अनन्तर सुबन्तसाधनार्थ षड्लिंग, स्त्रीप्रत्यय, कारक, समास, तद्धित रखे गये और तिङन्त पद-सिद्ध्यर्थ गण, प्रक्रिया, कृदन्त प्रकरण रखे गए; वैदिक प्रकरण तथा स्वर-प्रकरण निकाल कर पृथक् कर दिया गया, इस प्रणाली के प्रौढ ग्रन्थ हैं "प्रक्रिया-कौमुदी" तथा भट्टोजिदीक्षित की 'वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी"।

अर्वाचीन प्रणाली

यह प्रणाली सरल अवश्य सिद्ध हुई, पर विस्तृत होनेके कारण प्रारम्भिक छात्रोंका कष्ट इससे दूर न हो सका, अतः पण्डित श्री वरदराजने सिद्धान्तकौमुदी के संक्षिप्त संस्करण मध्यकौमुदी और लघुकौमुदी का निर्माण किया। लघुकौमुदी पाणिनीय व्याकरण में प्रवेश के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई। यह पाणिनीय व्याकरण की प्रवेशिका कही जा सकती है, इसका पूर्णतया अध्ययन कर लेने से व्याकरणके सभी विषयों का ज्ञान हो जाता है।

प्रारम्भिक व्याकरणशिक्षा

किन्तु आज का प्रारम्भिक शिशु विद्यार्थी लघुकौमुदी से पूर्ण लाभ उठाने में असमर्थ हो गया है, यथाकथञ्चित् षड्लिंग समाप्त कर शिशु छात्र गणों के बीहड़ जंगल में उलझ जाता है, उत्साह ढीला पड़ जाता है, आगेके आवश्यक प्रकरणों से वञ्चित रह जाता है, अधूरे प्रकरण रट रटा कर परीक्षा पास कर लेना चाहता है। प्रकरणों का अधूरा ज्ञान उसके भविष्य को धूमिल बना देता है।

प्रारम्भिक शिशुछात्रों के इस कष्ट को दूर करने के अभिप्राय से यह **'प्रारम्भिक पाणिनीय'** नामक छोटी-सी पुस्तिका—जिसे 'परम-लघु-कौमदी' भी कहा जा सकता है। संकलित की गई है। इसमें विस्तार को सर्वथा त्याग दिया गया है, अत्यावश्यक प्रारम्भिक विषय ही संगृहीत किये गए हैं। प्रकरणों में अतिसंक्षेप से काम लिया गया है—सन्धिप्रकरण में अत्यावश्यक साधारण सरल प्रयोग ही संग्रह किये गए हैं—अधिक वैकल्पिक दुरूह प्रयोग छोड़ दिये गए हैं, षड्लिंगों में भी बहुत थोड़ेसे अतिसरल अत्यावश्यक शब्द ही रखे गए हैं, अनन्तर कुछ अव्यय देकर, अतिसंक्षिप्त कारक प्रकरण और संक्षेप से समास प्रकरण दे दिया गया है। इसके आगे परमसंक्षिप्त तद्धित प्रकरण है, फिर थोड़े से स्त्रीप्रत्यय रखे गए हैं, इसके आगे गण रख दिये गए हैं, गणों में बहुत संक्षेप से काम लिया गया है, प्रत्येक गण में दो तीन धातुओं से अधिक धातु नहीं रखी गई। आगे प्रक्रिया केवल तीन ही रक्खी गई हैं—ण्यन्त, सन्नन्त, भावकर्म। इसके आगे थोड़े से कृदन्त दे दिये गए हैं, एवं लगभग साढ़े चार सौ सूत्रों में सारा ग्रन्थ समाप्त कर दिया गया है।

पुस्तक परिचय

नम्र निवेदन

आदरणीय अध्यापकवर्ग !

संस्कृतकी प्रारम्भिक शिक्षा आज सर्वथा विशृङ्खल हो रही है, कोई भी एक निश्चित क्रम नहीं है, विशेषतः संस्कृतविद्यालयों में, वर्णशिक्षा पूरी होते ही शिशुछात्र के हाथ में लघुकौमुदी पकड़ा दी जाती है, सूत्रों की रटन्त में ही सालों बीत जाते हैं, कोई आकर्षण न होने से मनोयोग उत्पन्न नहीं होता, हम छात्र पर पढ़ाई बलात् ठूँसते हैं। जिसका परिणाम यह होता है कि छात्र वर्षों के बाद प्राज्ञ प्रथमा परीक्षा देने के योग्य बन जाता है तथापि व्युत्पन्न नहीं हो पाता। अतः संस्कृत शिक्षा के कर्णधारों, विद्यालयाध्यक्षों तथा सहयोगी अध्यापकों की सेवा में विनीत प्रार्थना है कि इस ओर अवश्य शीघ्र ध्यान दें। संस्कृत की प्रारम्भिक शिक्षा को नियत क्रम-बद्ध तथा परिष्कृत बनाएँ।

प्रारम्भिक शिक्षाक्रम

लघुकौमुदी आरम्भ करने से पहले कम से कम दो वर्ष का पाठ्य क्रम हिन्दी में होना चाहिए, जिसके चार भाग हों, प्रत्येक भाग छह मास में समाप्त हो। इन चारों भागों में हिन्दी का पढ़ना-लिखना, साधारण गणित, साधारण भूगोल, अतिसरल प्राचीन इतिहास रहना चाहिये। और साथ ही तृतीय तथा चतुर्थ भाग में संस्कृत का प्रारम्भिक शिक्षण आरम्भ करा दिया जाए। जिसमें भाषा-शिक्षण के लिए संस्कृत पाठ-मालाएँ तथा ऋजुपाठ, और व्याकरण-शिक्षा के लिए यह "प्रारम्भिक पाणिनीय" पूर्वार्ध उत्तरार्ध भाग एक वर्ष में पढ़ा दिया जाए। अनन्तर लघुकौमुदी, हितोपदेश आदि प्राज्ञ श्रेणी का पाठ्य बड़े आनन्द से पढ़ाया जा सकेगा।

मुझे अतिप्रसन्नता होगी यदि मेरे माननीय सहयोगी इस विषय पर अपने विचार प्रकट करें, और संस्कृत-प्रारम्भिक शिक्षा की उपयोगी पुस्तिकाएँ

सविनय अनुरोध

निर्मित कर इस असह्य अभाव को दूर करने की चेष्टा करें। और साथ ही अपने २ विद्यालयों में क्रमबद्ध प्रारम्भिक शिक्षा को स्थान दें। आज दूसरी भाषाओं का प्रारम्भिक शिक्षाक्रम अत्यन्त सुन्दर परिमार्जित तथा सारल्य-पूर्ण बन चुका है, पर संस्कृत शिक्षा के कर्णधारों की कुम्भकर्णी निद्रा अभी

नहीं टूटी। अब समय है, ईश्वर की कृपा से इस विषय के धुरन्धर विद्वान् आज भी विद्यमान हैं, जिनके तनिक उद्योग से यह जटिल समस्या शीघ्र सुलझ सकती है। सुन्दर तथा वर्तमान-समयोपयोगी प्रारम्भिक संस्कृत पाठमालाएँ तथा प्रारम्भिक संस्कृतशब्दकोश निर्माण किये जा सकते हैं।

व्याकरण-विषयक प्रारम्भिक शिक्षा के लिए छोटी-सी पुस्तिका लिखने का मैंने साहस-किया है, अच्छा होता यदि यह कार्य किसी विशेष अनुभव-सम्पन्न विद्वान् द्वारा सम्पन्न होता, पर मैं विशेष अनुभवी विद्वानों से आशा रखता हूँ कि मेरी धृष्टता पर वे क्षमा करेंगे और मेरे इस प्रयास को अपने पुनीत हृदय में अवश्य स्थान देंगे। और मेरी त्रुटियों की सूचना मुझे देकर इसे पूर्ण परिमार्जित रूप में लाने के लिए मेरे सच्चे सहायक बनेंगे।

क्षमाप्रार्थना

प्रभु की कृपा से आज यह पुस्तक इस रूप में सम्पन्न हो सकी है, श्री पं० निगमानन्द शास्त्री ने शिशुछात्रोपकारार्थ सूत्रभाषा लिखकर इसे और भी उपयोगी बना दिया है। एवं यह सुन्दर "उपहार" हम शिशुछात्रों के अति ललित कोमल करकमलों में सस्नेह समर्पित करते हैं। हमें पूर्ण आशा है—शिशुछात्र इस उपहार से अति प्रसन्न होंगे, और पूर्णतया लाभ उठायेंगे।

सस्नेह समर्पण

भवदीय स्नेही
विश्वनाथ शास्त्री
आ० शु० द्वितीया, २००३

तृतीय संस्करण

यह तृतीय संस्करण पहले की अपेक्षा संशोधित तथा परिमार्जित रूप में प्रकाशित किया गया है। पहले की सब त्रुटियाँ और अशुद्धियाँ इसमें दूर कर दी गई हैं। आशा है शिशुछात्र इससे अब पूर्ण लाभ उठा सकेंगे।

सङ्कलयिता
भा० कृ० तृतीया सं० २०२०
(८-८-१९६३)



श्रीहरिः शरणम् ।

श्रीगणेशाय नमः । श्रीसरस्वत्यै नमः ।

प्रारम्भिक-पाणिनीयम्

अथ संज्ञा-प्रकरणम्

(शिव-सूत्राणि)

अ इ उ ण् । ऋ ऌ क् । ए ओ ङ् । ऐ औ च् । ह य व र ट् । ल ण् । ञ म ङ ण न म् । झ भ ञ् । घ ढ ध ष् । ज ब ग ड द श् । ख फ छ ठ थ च ट त व् । क प य् । श ष स र् । ह ल् ।

इति माहेश्वराणि सूत्राणि अणादि—सञ्ज्ञार्थानि । एषाम् अन्त्या इतः । हकारादिषु अकार उच्चारणार्थः । लण्-मध्ये तु इत्सञ्ज्ञकः ।

उपदेशेऽजनुनासिक इत् १ । ३ । २ ।

उपदेशेऽनुनासिकोऽच् इत्सञ्ज्ञः स्यात् ।

भाषार्थ—

इति माहेश्वराणीत्यादि—ये चौदह सूत्र अण् आदि संज्ञाओं (प्रत्याहारों) की सिद्धि के लिये महेश्वर की कृपा से प्राप्त हुए हैं। इनके अन्त के अक्षर इत्संज्ञक हैं। हकार आदि अक्षरों में अकार उच्चारणमात्र के लिए है। किन्तु—'लण्' सूत्र में अकार इत्संज्ञक है।

१—उपदेश में अननुनासिक अच् की इत् संज्ञा होती है।

२ हलन्त्यम् १ । ३ । ३ ।

उपदेशेऽन्त्यं हल् इत् स्यात् । उपदेशः=आद्योच्चारणम् ।

३ अदर्शनं लोपः १ । १ । ६० ।

प्रसक्तस्याऽदर्शनं लोप-सञ्ज्ञं स्यात् ।

४ तस्य लोपः १ । ३ । ९ ।

इत्सञ्ज्ञकस्य लोपः स्यात् । णादयोऽणाद्यर्थाः ।

५ आदिरन्त्येन सहेता १ । १ । ७१ ।

अन्त्येन इता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च सञ्ज्ञा स्यात् । यथा–"अण्" इति अ इ उ वर्णानां सञ्ज्ञा । एवम्–अक् अच् अल् हल् इत्यादयः ।

६ ऊकालोऽज् ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतः १ । २ । २७ ।

उ ऊ ऊ ३ इत्युच्चारण-काल-सदृश-कालोऽच् क्रमात् ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत-सञ्ज्ञः स्यात् । स प्रत्येकमुदात्तादि-भेदेन त्रिधा ।

७ उच्चैरुदात्तः १ । २ । २९ ।

२—उपदेश अवस्था में अन्त्य हल् की इत्संज्ञा होती है। पाणिनि आदि आचार्यों के प्रथम उच्चारण को उपदेश कहते हैं।

३—विद्यमान के अदर्शन को लोप कहते हैं।

४—इत्संज्ञक का लोप होता है।

'अ इ उ ण्' इत्यादि सूत्रों में णकार आदि अक्षर अण्-अक्-अच् इत्यादि प्रत्याहार सिद्धि के लिये हैं।

५—अन्त्य इत् के साथ उच्चार्यमाण आदिवर्ण मध्यगामी वर्णों का तथा अपना बोधक होता है। जैसे—'अण्' यह अ इ उ वर्णों का बोधक है। ऐसे ही अक्-अच्-अल्-हल् इत्यादि प्रत्याहार जानें।

६—उकारत्रय के उच्चारणकाल के समान उच्चारणवाला अच् ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत संज्ञा वाला होता है। ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत भेद से तीन प्रकार का अच् पुनः उदात्तादि भेद से तीन प्रकार का होता है।

७—ऊँचे उच्चारण को 'उदात्त' कहते हैं।

८ नीचैरनुदात्तः १ । २ । ३० ।

९ समाहारः स्वरितः १ । २ । ३१ ।

एवं स नव-विधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकाऽनुनासिकत्वाभ्यां द्विधा ।

१० मुख-नासिका-वचनोऽनुनासिकः १ । १ । ८ ।

मुख-सहितनासिकया उच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिक संज्ञः स्यात् । तदित्थम्—अ इ उ ऋ एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादश (१८ भेदाः ।) लृ-वर्णस्य द्वादश (१२); तस्य दीर्घाभावात् । एचामपि द्वादश, तेषां ह्रस्वाभावात् ।

११ तुल्यास्य-प्रयत्नं सवर्णम् १ । १ । ९ ।

ताल्वादिस्थानम् आभ्यन्तर-प्रयत्नश्च इत्येतद् द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथः सवर्ण-संज्ञं स्यात् । (ऋ-लृ-वर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्) ।

तत्र स्थानानि—

अ—कु—ह—विसर्जनीयानां कण्ठः ।

८—नीचे उच्चारण को 'अनुदात्त' कहते हैं ।

९—मध्य (न ऊँचा, न नीचा) उच्चारण को 'स्वरित' कहते हैं । वह नौ प्रकार का भी अच् अनुनासिक और अननुनासिक भेद से दो दो प्रकार का होता है ।

१०—मुखसहित नासिका से उच्चार्यमाण वर्ण अनुनासिक संज्ञक होता है । इस प्रकार अ, इ, उ, ऋ, वर्णों में से प्रत्येक के अठारह-अठारह भेद होते हैं । दीर्घ न होने से लृवर्ण के बारह भेद होते हैं । ह्रस्व न होने से एचों के भी बारह बारह भेद होते हैं । (चक्र में आगे देखो) ।

११—तालु आदि स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न जिन वर्णों के तुल्य हों उनकी परस्पर सवर्ण संज्ञा होती है । (ऋ और लृ वर्ण की आपस में सवर्ण संज्ञा होती है) ।

अथ स्थानविवेक

अकार, कवर्ग, हकार और विसर्जनीय, इनका कण्ठ स्थान है ।

इ–चु–य–शानां तालु ।

ऋ–टु–र–षाणां मूर्धा ।

लृ–तु–ल–सानां दन्ताः ।

उ–पु–उपध्मानीयानाम् ओष्ठौ ।

ञ–म–ङ–ण–नानां नासिका च ।

एदैतोः कण्ठ-तालु ।

ओदौतोः कण्ठोष्ठम् ।

'व'–कारस्य दन्तोष्ठम् ।

अ इ उ ऋ लृ	अ इ उ ए ओ ऐ औ	अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ
ह्रस्वभेदाः	दीर्घभेदाः	प्लुतभेदाः
१ ह्र. उदात्तानुनासिकः	७दी. उदात्तानुनासिकः	१३ प्लु. उदात्तानुनासिकः
२ ह्र. उदात्ताननुनासिकः	८दी. उदात्ताननुनासिकः	१४ प्लु. उदात्ताननुनासिकः
३ह्र.अनुदात्तानुनासिकः	९दी. अनुदात्तानुनासिकः	१५ प्लु. अनुदात्तानुनासिकः
४ह्रअनुदात्ताननुनासिकः	१०दी. अनुदात्ताननुनासिकः	१६ प्लु. अनुदात्ताननुनासिकः
५ ह्र. स्वरितानुनासिकः	११दी. स्वरितानुनासिकः	१७ प्लु. स्वरितानुनासिकः
६ ह्र. स्वरिताननुनासिकः	१२दी. स्वरिताननुनासिकः	१८ प्लु. स्वरिताननुनासिकः

इकार, चवर्ग, यकार और शकार, इनका 'तालु' स्थान है।

ऋकार, टवर्ग, रेफ और षकार, इनका 'मूर्धा' स्थान है।

लृकार तवर्ग लकार और सकार, इनका 'दन्त' स्थान है।

उकार, पवर्ग और उपध्मानीय, इनका 'ओष्ठ' स्थान है।

ञकार-मकार-ङकार-णकार-नकार, इनका नासिका स्थान है, चकार से (इनके) स्व-स्व स्थान भी हैं।

ए और ऐ का कण्ठ-तालु स्थान है।

ओ और औ का कण्ठोष्ठ स्थान है।

वकार का दन्तोष्ठ स्थान है।

जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्।

अनुस्वारस्य नासिका।

ᳵक, ᳵख इति क-खाभ्यां प्राग् अर्ध-विसर्गसदृशो जिह्वा-मूलीयः।

ᳶप, ᳶफ इति प-फाभ्यां प्राग् अर्ध-विसर्ग-सदृश उपध्मानीयः।

'अं', 'अः', इत्यचः परौ अनुस्वार-विसर्गौ।

अथ प्रयत्नाः

यत्नो द्विधा आभ्यन्तरो बाह्यश्च। आद्यः पञ्चधा—स्पृष्टम्, ईषत्-स्पृष्टम्, विवृतम्, ईषद्-विवृतम्, संवृतमिति भेदात्। तत्र स्पृष्टं प्रयतनं स्पर्शानाम्। ईषत्स्पृष्टम् अन्तःस्थानाम्। विवृतं स्वराणाम्। ईषद्-विवृतम् ऊष्मणाम्। संवृतं प्रयोगे ह्रस्वाऽवर्णस्य।

कादयो माऽवसानाः स्पर्शाः। यणोऽन्तःस्थाः। श-ष-स-हाः=ऊष्माणः। अचः—स्वराः। हलः=व्यञ्जनानि।

जिह्वामूलीय का जिह्वामूल स्थान है।

अनुस्वार का नासिका स्थान है।

ᳵक ᳵख से पूर्व अर्ध विसर्ग सदृश जिह्वामूलीय कहलाता है। ᳶप ᳶफ से पूर्व अर्धविसर्ग सदृश उपध्मानीय कहलाता है। अनुस्वार और विसर्ग अच् से परे होते हैं; जैसे—'अं' 'अः'।

अथ प्रयत्न

यत्न दो प्रकार का है, आभ्यन्तर और बाह्य। आभ्यन्तर प्रयत्न पाँच प्रकार का है, स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, विवृत, ईषद्विवृत, और संवृत। उनमें स्पृष्ट प्रयत्न स्पर्शों का है, अन्तःस्थों का ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न है, स्वरों का विवृत प्रयत्न है। ऊष्म-वर्णों का ईषद्विवृत प्रयत्न है। ह्रस्व अवर्ण का प्रयोग में संवृत प्रयत्न होता है। क से म तक स्पर्श कहलाते हैं। यणों को अन्तःस्थ वर्ण कहते हैं। श ष स ह को ऊष्मवर्ण कहते हैं। अचों को स्वर कहते हैं। हलों को व्यञ्जन कहते हैं।

बाह्यप्रयत्न एकादशधा—विवारः, संवारः, श्वासः, नादः, अघोषः घोषः, अल्पप्राणः, महाप्राणः, उदात्तः, अनुदात्तः, स्वरितश्चेति। खरां विवारः, श्वासोऽघोषश्च। हशां संवारो, नादो, घोषश्च। वर्गाणां प्रथम-तृतीय-पञ्चमा यणश्चाल्पप्राणाः। वर्गाणां द्वितीय-चतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः।

आभ्यन्तरप्रयत्नचित्रम्

स्पृष्टम्	ई. स्पृ.	विवृतम्	ई. वि.	संवृतम्
क. च. ट. त. प.	य.	अ. ए.	श.	ह्रस्वः 'अ' प्रयोगे
ख. छ. ठ. थ. फ.	र.	इ. ओ.	ष.	
ग. ज. ड. द. ब.	ल.	उ. ऐ.	स.	
घ. झ. ढ. ध. भ.	व.	ऋ. औ.	ह.	
ङ. ञ. ण. न. म.		ऌ.		

बाह्य प्रयत्न ग्यारह प्रकार का होता है, जैसे—विवार, संवार, श्वास, नाद, अघोष, घोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त, और स्वरित।

खर् प्रत्याहार के वर्णों के विवार-श्वास-अघोष प्रयत्न होते हैं। हश् प्रत्याहार के वर्णों के संवार-नाद-घोष प्रयत्न होते हैं। वर्गों के प्रथम-तृतीय पञ्चम वर्ण तथा यण्, इनका अल्पप्राण प्रयत्न होता है। वर्गों के द्वितीय-चतुर्थ वर्ण और शल् प्रत्याहार इनका महाप्राण प्रयत्न होता है।

बाह्यप्रयत्नविवेकः

विवारःश्वासः अघोषः	संवारः, नादःघोषः	अल्पप्राणः	महाप्राणः	उदात्तः, अनुदात्तः, स्वरितः
क. ख. श.	ग. घ. ङ. य.	क. ग. ङ. य. अ. ऌ.	ख. घ. श.	अ. ए.
च. छ. ष.	ज. झ. ञ. व.	च. ज. ञ. व. इ. ए.	छ. झ. ष	इ. ओ.
ट. ठ. स.	ड. ढ. ण. र.	ट. ड. ण. र. उ. ओ.	ठ. ढ. स.	उ. ऐ.
त. थ.	द. ध. न. ल.	त. द. न. ल. ऋ. ऐ.	थ. ध. ह.	ऋ. औ.
प. फ.	ब. भ. म. [illegible]	[illegible] म. औ.	फ. भ.	ऌ.

१२ अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः । १ । १ । ६९ ।

अविधीयमानोऽण् उदित् च सवर्णस्य सञ्ज्ञा स्यात् । अत्रैव 'अण्' परेण णकारेण । कु–चु–टु–तु–पु एते उदितः । तदेवम् 'अ' इत्यष्टादशानां (१८) संज्ञा । तथा इकारः, उकारश्च । ऋकारः त्रिंशतः (३०) संज्ञा । अनुनासिकाऽननुनासिक–भेदेन य-व-ला द्विधा । ते च द्वयोर्द्वयोः संज्ञा ।

१३ परः सन्निकर्षः संहिता १ । ४ । १०९ ।

वर्णानामति–सन्निधिः संहिता–संज्ञः स्यात् ।

१४ हलोऽनन्तराः संयोगः १ । १ । ७ ।

अज्भिरव्यवहिता हलः संयोग–संज्ञाः स्युः ।

१५ सुप्तिङन्तं पदम् १ । १ । १४ ।

सुबन्तं तिङन्तञ्च पद-संज्ञं स्यात् । यथा—रामः, भवति ।

१६ अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा १ । १ । ६५ ।

अन्त्यादलः पूर्वो वर्ण उपधासंज्ञः स्यात् ।

इति संज्ञा-प्रकरणम्

१२—अविधीयमान अण् और उदित् सवर्ण का बोधक होता है । केवल इसी सूत्र में अण् प्रत्याहार पर णकार (लण् के णकार) से लिया जाता है । कु-चु-टु-तु-पु ये उदित् कहलाते हैं ।

'अ' यह अठारह का बोधक होता है । इसी प्रकार इकार उकार भी अठारह अठारह के बोधक होते हैं । ऋकार तीस का बोधक होता है । अनुनासिक और अननुनासिक भेद से य-व-ल दो-दो प्रकार के होते हैं । अतएव अननुनासिक य-व-ल दो-दो के बोधक होते हैं ।

१३—वर्णों की अतिशय समीपता को 'संहिता' कहते हैं ।

१४—अचों के व्यवधान से रहित हल् 'संयोग' संज्ञक होते हैं ।

१५—सुबन्त और तिङन्त की 'पद' संज्ञा होती है । जैसे—रामः, भवति ।

१६—अन्त्य अल् से पूर्व वर्ण को 'उपधा' संज्ञा होती है ।

इति संज्ञाप्रकरणम् ।

अथ अच्सन्धिः

१७ इको यणचि ६ । १ । ७७ ।

इकः स्थाने यण् स्याद् अचि संहितायां विषये । सुधी—उपास्यः, इति स्थिते ।

१८ स्थानेऽन्तरतमः १ । १ । ५० ।

प्रसङ्गे सति सदृशतम आदेशः स्यात् । ईकारस्य यकारे, "अज्-हीनं परेण संयोज्यम्" सुध्युपास्यः । मधु+अरिः=मध्वरिः । धातृ+अंशः= धात्रंशः । लृ+आकृतिः=लाकृतिः । गौरी+आगच्छति=गौर्यागच्छति । कुरु+इदम्=कुर्विदम् । मातृ+आज्ञा=मात्राज्ञा । लृ+आकारः=लाकारः ।

१९ एचोऽयवायावः ६ । १ । ७८ ।

एचः क्रमात् 'अय्, अव्, आय्, आव्' एते स्युरचि । हरि+ए=हरये । विष्णो+ए=विष्णवे । नै+अकः=नायकः । पौ+अकः=पावकः । ने+अति=नयति । भो+अति=भवति । वटो+ऋक्षः=वटवृक्षः । ग्लै+अति=ग्लायति । नौ+इकः=नाविकः । भौ+उकः=भावुकः ।

२० अदेङ् गुणः १ । १ । २ ।

अत् एङ् च गुण-संज्ञः स्यात् ।

अथ अच्सन्धि

१७—इक् के स्थान में यण् होता है अच् परे होने पर संहिता के विषय में ।

१८—प्रसंग होने पर सदृशतम आदेश होता है । अच् रहित वर्ण अगले वर्ण के साथ मिला देना चाहिये ।

१९—एचों को क्रम से अय्, अव्, आय्, आव्, आदेश होते हैं अच् परे हो तो ।

२०—अत् और एङ् की गुण संज्ञा होती है ।

२१ तपरस्तत्कालस्य १ । १ । ७० ।

तः परो यस्मात् तात् परश्च उच्चार्यमाण-समकालस्यैव सञ्ज्ञा स्यात् ।

२२ आद्गुणः ६ । १ । ८७ ।

अवर्णाद् अचि परे पूर्वपरयोरेको गुण आदेशः स्यात् । उप + इन्द्रः = उपेन्द्रः । गङ्गा = उदकम् = गङ्गोदकम् । गज + इन्द्रः = गजेन्द्रः । रमा + ईशः = रमेशः । सूर्य + उदयः = सूर्योदयः । पाठ + उत्सुकः=पाठोत्सुकः ।

२३ उरण् रपरः १ । १ । ५१ ।

ऋ—स्थाने योऽण् स रपरः सन्नेव प्रवर्तते । कृष्ण + ऋद्धिः = कृष्णर्धिः । राज + ऋषिः = राजर्षिः । वसन्त + ऋतुः = वसन्तर्तुः ।

२४ वृद्धिरादैच् १ । १ । १ ।

आद् ऐच्च वृद्धि-संज्ञः स्यात् ।

२५ वृद्धिरेचि ६ । १ । ८८ ।

आद् एचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । गुणाऽपवादः । कृष्ण + एकत्वम् = कृष्णैकत्वम् । गङ्गा + ओघः = गङ्गौघः । देव + ऐश्वर्यम् = देवैश्वर्यम् । कृष्ण + औत्कण्ठ्यम् = कृष्णौत्कण्ठ्यम् । पञ्च + एते = पञ्चैते ।

२१—तकार है परे जिससे अथवा तकार से परे जो अच् वह उच्चार्यमाण समानकाल का ही बोधक होता है । (अर्थात्—यदि ह्रस्व के साथ त् है तो ह्रस्व का, दीर्घ प्लुत के साथ त् होगा तो दीर्घ और प्लुत का ही बोधक होगा) ।

२२—अवर्ण से अच् परे हो तो पूर्व पर के स्थान में गुण रूप एक आदेश होता है ।

२३—तीस प्रकार की ऋ के स्थान में होने वाला अण् रपर होकर प्रवृत्त होता है ।

२४—आत् और ऐच् की वृद्धि संज्ञा होती है ।

२५—अवर्ण से एच् परे हो तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धिरूप एक आदेश होता है । यह सूत्र गुण का अपवाद है ।

तण्डुल + ओदनम् = तण्डुलौदनम् । माधव + एधनम् = माधवैधनम् । राम + औदार्यम् = रामौदार्यम् ।

२६ अकः सवर्णे दीर्घः ६ । १ । १०१ ।

अकः सवर्णऽचि परे पूर्वपरयोर्दीर्घ एकादेशः स्यात् । दैत्य + अरिः = दैत्यारिः । श्री + ईशः = श्रीशः । विष्णु + उदयः = विष्णूदयः । होतृ + ऋकारः = होतृकारः । मुर + अरि = मुरारिः । भानु + उदयः = भानूदयः । लक्ष्मी + ईशः = लक्ष्मीशः ।

२७ एङः पदान्तादति ६ । १ । १०९ ।

पदान्ताद् एङोऽति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् । हरे + अव = हरेऽव विष्णो + अव = विष्णोऽव । स्थले + अत्र = स्थलेऽत्र । कृष्णो + अहम् = कृष्णोऽहम् ।

२८ दूराद्धूते च ८ । २ । ८४ ।

दूरात् हूते (सम्बोधने) वाक्यस्य टेः प्लुतो वा ।

२९ प्लुत-प्रगृह्या अचि नित्यम् ६ । १ । १२५ ।

एतेऽचि प्रकृत्या स्युः । आगच्छ कृष्ण३ अत्र गौश्चरति ।

३० ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् १ । १ । ११ ।

ईदूदेदन्तं द्विवचनं प्रगृह्य-संज्ञं स्यात् । विष्णू इमौ । गङ्गे अमू । धनुषी एते । भानू उदयेते । कुले उत्कृष्टे ।



इत्यच्-सन्धिः ।

२६—अक् से सवर्ण अच् परे हो तो पूर्व पर के स्थान में दीर्घरूप एक आदेश होता है ।

२७—पदान्त एङ् से अत् परे हो तो पूर्व पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होता है ।

२८—दूर से सम्बोधन में वाक्य की टि को प्लुत होता है विकल्प से ।

२९—प्लुत और प्रगृह्य को अच् परे हो तो नित्य प्रकृतिभाव होता है ।

३०—ईदन्त, ऊदन्त और एदन्त द्विवचन प्रगृह्य संज्ञक होता है ।

इति अच्सन्धि ।

अथ हल्सन्धिः

३१ स्तोः श्चुना श्चुः ८ । ४ । ४० ।

सकार-तवर्गयोः शकार-चवर्गाभ्यां योगे शकारचवर्गौ स्तः । रामस् + शेते = रामश्शेते । रामस् + चिनोति=रामश्चिनोति । सत् + चित्=सच्चित् । शार्ङ्गिन् + जयः=शार्ङ्गिञ्जयः । कृष्णस् + चपलः = कृष्णश्चपलः । ग्रामात् + चलितः=ग्रामाच्चलितः ।

३२ झलां जशोऽन्ते ८ । २ । ३९ ।

पदान्ते झलां जशः स्युः वाक् + ईश=वागीशः । मत् + आगमनम् = मदागमनम् ।

३३ यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ८ । ४ । ४५ ।

यरः पदान्तस्याऽनुनासिके परेऽनुनासिको वा स्यात् । एतत् + मुरारिः = एतन्मुरारिः । वाक् + मधु = वाङ्मधु । सत् + मनोहरम् = सन्मनोहरम् । उद् + मानम् = उन्मानम् । ऋक् + मन्त्रः = ऋङ्मन्त्रः ।

३४ खरि च ८ । ४ । ५५ ।

खरि परे झलां चरः स्युः । अस्मद् + पुत्रः = अस्मत्पुत्रः ।

३५ मोऽनुस्वारः ८ । ३ । २३ ।

मान्तस्य पदस्याऽनुस्वारो हलि परे । हरिम् + वन्दे = हरिं वन्दे । ग्रामम् + गच्छति = ग्रामं गच्छति । कृष्णम् + नमति कृष्णं नमति ।

अथ हल्-सन्धि

३१—सकार-तवर्ग को शकार-चवर्ग के योग में शकार-चवर्ग होते हैं ।

३२—पदान्त में झलों को जश् होते हैं ।

३३—पदान्त यर् को अनुनासिक परे हो तो अनुनासिक विकल्प से होता है ।

३४—खर् परे हो तो झलों को चर् होते हैं ।

३५—मान्त पद को अनुस्वार होता है हल् परे हो तो ।

३६ नश्चाऽपदान्तस्य झलि ८ । ३ । २४ ।

नस्य मस्य चाऽपदान्तस्य झलि परेऽनुस्वारः। यशान् + सि = यशांसि । वासान् + सि = वासांसि । आक्रम् + स्यते = आक्रंस्यते । प्रणम् + स्यते=प्रणंस्यते ।

३७ अनुस्वारस्य ययि पर-सवर्णः ८ । ४ । ५८ ।

अपदान्तस्याऽनुस्वारस्य ययि परे पर-सवर्णः स्यात्। शां + तः = शान्तः । अं + कितः = अङ्कितः । अं + चितः = अञ्चितः । कुं + ठितः = कुण्ठितः । ग्रं + थः = ग्रन्थः । दां + तः = दान्तः । गुं + फितः = गुम्फितः ।

३८ ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम् ८ । ३ । ३२ ।

ह्रस्वात् परो यो ङम् तदन्तं यत् पदं तस्मात् परस्य अचो नित्यं ङमुट् (ङुट्—णुट्—नुट्) स्यात्। प्रत्यङ् + आत्मा = प्रत्यङ्ङात्मा । सुगण् + ईश = सुगण्णीशः । सन् + अच्युतः = सन्नच्युतः ।

३९ छे च ६ । १ । ७३ ।

ह्रस्वस्य छे परे तुक् स्यात्। शिव + छाया = शिवच्छाया ।

इति हल्-सन्धिः ।

३६—अपदान्त नकार और मकार को अनुस्वार होता है झल् परे हो तो ।

३७—अनुस्वार को यय् परे हो तो परसवर्ण होता है ।

३८—ह्रस्व से परे जो ङम्, तदन्त पद से परे अच् को नित्य ङमुट् का आगम होता है ।

३९—ह्रस्व को 'छ' परे हो तो तुक् का आगम होता है ।

इति हल्-सन्धि ।

—:०:—

अथ विसर्ग-सन्धिः

४० स-सजुषो रुः ८ । २ । ६६ ।

पदान्तस्य सस्य, सजुषश्च रुः स्यात् ।

४१ खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८ । ३ । १५ ।

खरि अवसाने च पदान्तस्य रेफस्य विसर्गः स्यात् ।

४२ विसर्जनीयस्य सः ८ । ३ । ३४ ।

खरि परे विसर्जनीयस्य सः स्यात् । विष्णुस् + त्राता, सस्य रुः अनुबन्धलोपे रेफस्य विसर्गः, विष्णुस्त्राता ।

४३ अतोरोरप्लुतादप्लुते ६ । १ । ११३ ।

अप्लुताद् अतः परस्य रोः उः स्यात् अप्लुते अति परे । शिवस् अर्च्यः, रुत्वे उत्वं, गुणे पूर्वरूपम्, शिवोऽर्च्यः । एवम्—शुद्धोऽहम् । बुद्धोऽस्मि । छात्रोऽयम् ।

४४ हशि च ६ । १ । ११४ ।

अप्लुताद् अतः परस्य रोः उः स्याद् हशि परे । शिवस् + वन्द्यः, सस्य रुत्वे उत्वं गुणः, शिवो वन्द्यः । एवम्—रामो वदति । छात्रो गच्छति । कृष्णो जयति । काको डीयते । कर्णो ददाति । व्यासो ब्रूते ।

४५ भो-भगो-अघो-अ-पूर्वस्य योऽशि ८ । ३ । १७ ।

एतत् पूर्वस्य रोर्यादेशोऽशि परे । देवा इह । एवम्—छात्रा

अथ विसर्ग-सन्धि

४०—पदान्त सकार और सजुष् शब्द के षकार को रु होता है ।

४१—खर् परे और अवसान में पदान्त रेफ को विसर्ग होता है ।

४२—खर् परे हो तो विसर्गों को स् होता है ।

४३—अप्लुत अत् से परे रु को उ होता है अप्लुत अत् परे हो तो ।

४४—अप्लुत अत् से परे रु को उ होता है हश् परे हो तो ।

४५—भो-भगो-अघो और अकार हो पूर्व में जिसके ऐसे 'रु' को य् होता है अश् परे हो तो ।

आगच्छन्ति। वीरा उत्सहन्ते। देवा एधन्ते। भोस्, भगोस्, अघोस्, इति सकारान्ता निपाताः, तेषां रोर्यत्वे कृते—

४६ हलि सर्वेषाम् ७। ३। २२।

भो भगो अघो अ-पूर्वस्य यस्य लोपः स्याद् हलि। भो देवाः!। भगो नमस्ते। अघो याहि। देवा नमन्ति। धार्मिका वर्धन्ते। भक्ता भजन्ति। बाला रमन्ते। याज्ञिका यान्ति। विप्रा दयन्ते।

४७ रोरि ८। ३। १४।

रेफे परे रेफस्य लोपः स्यात्।

४८ ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ६। ३। १११।

ढ–रेफयोः लोप-निमित्तयोः परतः पूर्वस्याऽणो दीर्घः स्यात्। पुनर् + रमते = पुना रमते। हरिर् + रम्यः = हरी रम्यः। शम्भुर् + राजते = शम्भू-राजते। निर् + रसः = नीरसः। प्रातर् + रमते = प्राता रमते।

४९ एतत्तदोः सु-लोपोऽकोरनञ्-समासे हलि ६। १। १३२

ककार-रहितयोरेतत्तद्-शब्दयोर्यः सुस्तस्य लोपः स्यात् हलि, न तु नञ्-समासे। एषस् + विष्णुः = एष विष्णुः। सस् + शम्भुः = स शम्भुः। एवम्—एष शोभते। स चलति। स गच्छति। स च।

इति विसर्ग-सन्धिः।

४६—भो-भगो-अघो अ-पूर्वक यकार का लोप होता है हल् परे हो तो।

४७—रेफ परे हो तो रेफ का लोप होता है।

४८—लोपनिमित्तक ढ और रेफ परे हो तो पूर्व अण् को दीर्घ होता है।

४९—ककार रहित एतत् और तत् शब्द सम्बन्धी सु का लोप होता है हल् परे हो तो, नञ् समास में नहीं।

इति विसर्ग-सन्धि।

अथ षड्-लिङ्गेषु

अजन्त-पुँल्लिङ्गाः

५० अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् १ । २ । ४५ ।

धातुं प्रत्ययं प्रत्ययान्तं च वर्जयित्वा अर्थवत् शब्द-स्वरूपं प्रातिपदिकसंज्ञं स्यात् ।

५१ कृत्तद्धित-समासाश्च १ । २ । ४६ ।

कृत्-तद्धितान्तौ समासाश्च प्रातिपदिक-संज्ञाः स्युः । रामशब्दः कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकम् ।

५२ स्वौजसमौट्-छष्टाभ्यां-भिस्-ङे-भ्याम्-भ्यस्-ङसि-भ्याम्-भ्यस् ङसोसाम्-ङ्योस्सुप् ४ । १ । २ ।

सु, औ, जस् , इति प्रथमा । अम् , औट् , शस् , इति द्वितीया । टा, भ्यां, भिस् , इति तृतीया । ङे, भ्यां, भ्यस् , इति चतुर्थी । ङसि, भ्यां, भ्यस् , इति पञ्चमी । ङस् , ओस् , आम् , इति षष्ठी । ङि, ओस् , सुप् , इति सप्तमी ।

५३ ङ्याप्-प्रातिपादिकात् ४ । १ । १ ।

५४ प्रत्ययः ३ । १ । १ ।

५५ परश्च ३ । १ । २ ।

इत्यधिकृत्य । ङ्यन्तात् आबन्तात् प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः प्रत्ययाः स्युः ।

अथ अजन्त-पुंल्लिङ्ग

५०—धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त से भिन्न अर्थवान् शब्दस्वरूप की प्रातिपदिक संज्ञा होती है ।

५१—कृदन्त, तद्धितान्त और समासान्त की प्रातिपदिक संज्ञा होती है ।

५२–५३–५४–५५ ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से परे सु आदि प्रत्यय होते हैं ।

५६ सुपः १ । ४ । १०३ ।

सुपः त्रीणि त्रीणि वचनानि एकशः एकवचन–द्विवचन–बहुवचन–संज्ञानि स्युः ।

५७ द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने १ । ४ । २२ ।

एकत्व-विवक्षायाम् एकवचनं, द्वित्व-विवक्षायां द्विवचनं स्यात् । राम+सु, अनुबन्ध-लोपे, रामस्—

५८ विरामोऽवसानम् १ । ४ । ११० ।

वर्णानाम् अभावोऽवसान-संज्ञः स्यात् । रुत्व-विसर्गौ । रामः । राम+औ—

५९ प्रथमयोः पूर्व-सवर्णः ६ । १ । १०२ ।

अकः प्रथमा-द्वितीययोरचि पूर्व-सवर्ण-दीर्घ एकादेशः स्यात् । इति प्राप्ते—

६० नादिचि ६ । १ । १०४ ।

अवर्णाद् इचि परे न पूर्व-सवर्ण-दीर्घः । "वृद्धिरेचि" रामौ ।

६१ बहुषु बहुवचनम् १ । ४ । २१ ।

बहुत्व-विवक्षायां बहुवचनं स्यात् । राम+जस्—

---

५६ सुप् के तीन तीन वचन एकवचन, द्विवचन और बहुवचन संज्ञक होते हैं ।

५७ एकत्व की विवक्षा में एकवचन, और द्वित्व की विवक्षा में द्विवचन होता है ।

५८ वर्णों के अभाव को अवसान कहते हैं ।

५९ अक् से प्रथमा द्वितीया सम्बन्धी अच् परे हो तो पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश होता है । यह सूत्र प्राप्त हुआ ।

६० अवर्ण से इच् परे हो तो पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होता ।

६१ बहुत्व की विवक्षा में बहुवचन होता है ।

६२ चुटू । १ । ३ । ७ ।

प्रत्ययाद्यौ चवर्ग-टवर्गौ इतौ स्तः । जस्य इत्त्वे लोपः ।

६३ विभक्तिश्च १ । ४ । १०४ ।

सुप्-तिङौ विभक्तिसंज्ञौ स्तः ।

६४ न विभक्तौ तुस्माः १ । ४ । ४ ।

विभक्तिस्थाः तवर्ग-सकार-मकारा इतो न स्युः । इति सस्य नेत्त्वम् । पूर्व-सवर्ण दीर्घे रुत्वविसर्गौ, रामाः ।

६५ एक-वचनं सम्बुद्धिः २ । ३ । ४९ ।

सम्बोधने प्रथमाया एकवचनं सम्बुद्धि-संज्ञं स्यात् ।

६६ यस्मात् प्रत्यय-विधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् १ । ४ । १३ ।

यः प्रत्ययो यस्मात् क्रियते तदादि शब्द-स्वरूपं तस्मिन् प्रत्यये परेऽङ्गसंज्ञं स्यात् ।

६७ एङ्-ह्रस्वात् सम्बुद्धेः ६ । १ । ६९ ।

एङन्तात् ह्रस्वान्ताच्च अङ्गाद् हल् लुप्यते सम्बुद्धेश्चेत् । हे राम !, हे रामौ !, हे रामाः !, । राम + अम्—

६८ अमि पूर्वः ६ । १ । १०७ ।

अकः अम्यचि परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् । रामम् । रामौ । राम + शस्—

६२—प्रत्यय के आदि चवर्ग-टवर्ग की इत् संज्ञा होती है ।

६३—सुप् और तिङ् की विभक्ति संज्ञा होती है ।

६४—विभक्तिस्थ तवर्ग-सकार-मकार की इत् संज्ञा नहीं होती ।

६५—सम्बोधन में प्रथमा के एकवचन को सम्बुद्धि कहते हैं ।

६६—जो प्रत्यय जिससे किया जाय, तदादि शब्दस्वरूप को उस प्रत्यय के परे होने पर अङ्ग संज्ञा होती है ।

६७—एङन्त और ह्रस्वान्त अङ्ग से परे हल् का लोप होता है, यदि वह सम्बुद्धि का हो तो ।

६८—अक् से अम् सम्बन्धी अच् परे हो तो पूर्वरूप एकादेश होता है ।

६९ ल-श-क्वतद्धिते १ । ३ । ८ ।

तद्धित-वर्ज्यप्रत्ययाऽऽद्या ल-श-कवर्गा इत्संज्ञकाः स्युः। शस्य इत्त्वे लोपे पूर्वसवर्णदीर्घे च।

७० तस्माच्छसो नः पुंसि ६ । १ । १०३ ।

पूर्व-सवर्ण-दीर्घात् परो यः शसः सः तस्य नः स्यात् पुंसि। इति सस्य नः।

७१ अट्-कुप्वाङ्-नुम्-व्यवायेऽपि ८ । ४ । २ ।

अट्, कवर्गः, पवर्गः, आङ्, नुम्, एतैर्व्यस्तैः यथासम्भवं मिलितैश्च व्यवधानेऽपि र-षाभ्यां परस्य नस्य णः स्यात् समान-पदे। इति प्राप्ते।

७२ पदान्तस्य २ । ४ । ३७ ।

पदान्तस्य नस्य णो नः स्यात्। रामान्।

७३ टा-ङसि-ङसामिनाऽऽत्स्याः ७ । १ । १२ ।

अदन्तात् टादीनामिनादयः स्युः। अर्थात् - 'टा' इत्यस्य 'इन', 'ङसि' इत्यस्य 'आत्', 'ङस्' इत्यस्य 'स्य' इति। राम + (टा) इन। गुणो णत्वम्। रामेण।

७४ सुपि च ७ । ३ । १०२ ।

यञादौ सुपि अतोऽङ्गस्य दीर्घः स्यात्। रामाभ्याम्, राम + भिस्

६९—तद्धित प्रत्यय को छोड़कर प्रत्यय के आदि ल श कवर्ग की इत् संज्ञा होती है।

७०—पूर्व-सवर्ण दीर्घ से परे शस् के स् को न् होता है।

७१—अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ्, नुम् इनका अलग अलग या जितनों का सम्भव हो उतनों के व्यवधान में भी रेफ षकार से परे न् को ण् होता है समानपद में।

७२—पदान्त नकार को णकार नहीं होता।

७३—अदन्त अंग से परे टादियों को इनादि आदेश होते हैं।

७४—यञादि सुप् परे हो तो अदन्त अंग को दीर्घ होता है।

७५ अतो भिस ऐस् ७ । १ । १३ ।

अदन्ताद् अङ्गात् भिस ऐस् स्यात् ।

७५ ॥ अलोऽन्त्यस्य १ । १ । ५२ ॥

षष्ठी-निर्दिष्टस्यान्त्यस्याल आदेशः स्यात् ।

७६ अनेकाल् शित् सर्वस्य १ । १ । ५५ ।

अनेकाल् शित् च आदेशः सर्वस्य स्थाने स्यात् । वृद्धिः । रामैः ।

७७ ङेर्यः ७ । १ । ९ ।

अतोऽङ्गात् परस्य ङेर्यादेशः स्यात् ।

७८ स्थानिवदादेशोऽनल्-विधौ १ । १ । ५६ ।

आदेशः स्थानिवत्, स्यात् न तु स्थान्यलाश्रयविधौ । इति स्थानिवत्त्वात् "सुपि च" इति दीर्घः । रामाय । रामाभ्याम् ।

७९ बहुवचने झल्येत् ७ । १ । १०३ ।

झलादौ बहुवचने सुपि अतोऽङ्गस्य एकारः स्यात् । रामेभ्यः ।

८० वाऽवसाने ८ । ४ । ५६ ।

अवसाने झलां चरो वा । रामात्, रामाद् । रामाभ्याम् । रामेभ्यः । रामस्य । राम + ओस्—

८१ ओसि च ७ । ३ । १०४ ।

अतोऽङ्गस्य एकारः स्याद् ओसि परे । अय् । रामयोः । राम + आम्

७५—अदन्त अंग से परे भिस् को ऐस् आदेश होता है ।

७५—॥ षष्ठीनिर्दिष्ट के अन्त्य अल् को आदेश होता है ॥

७६—अनेकाल् तथा शित् आदेश सारे के स्थान में होता है ।

७७—अदन्त अंग से परे ङे को य आदेश होता है ।

७८—आदेश स्थानिवत् होता है परन्तु स्थानिसम्बन्धी जो अल्, तदाश्रयविधि कर्तव्य हो तो स्थानिवद्भाव नहीं होता ।

७९—झलादि बहुवचन सुप् परे हो तो अदन्त अंग को एकार होता है ।

८०—अवसान (अन्त) में झलों को विकल्प से चर् होता है ।

८१—ओस् परे हो तो अदन्त अङ्ग को एकार होता है ।

८२ ह्रस्व-नद्यापो नुट् ७ । १ । ५४ ।

ह्रस्वान्ताद् नद्यन्ताद् आबन्ताच्चाऽङ्गात् परस्य आमो नुडागमः स्यात् ।

८३ नामि ६ । ४ । ३ ।

अजन्ताऽङ्गस्य दीर्घः स्याद् नामि परे। णत्वं । रामाणाम् । राम + (ङि) इ, गुणः । रामे । रामयोः । राम + सु, एत्वे कृते—

८४ आदेश-प्रत्यययोः २ । ३ । ५९ ।

इण्कुभ्यां परस्याऽपदान्तस्य आदेशः प्रत्ययावयवश्च यः सस्तस्य षकारादेशः स्यात् रामेषु । एवम्—कृष्णादयोऽपि अदन्ताः ।

८५ सर्वादीनि सर्वनामानि १ । १ । २७ ।

सर्व, विश्व, उभ, उभय, डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, सिम । पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर । त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवतु, किम् । (इति सर्वादयः) ।

८६ जशः शी ७ । १ । १७ ।

अदन्तात् सर्वनाम्नो जशः शी स्यात् । अनेकाल्त्वात् सर्वादेशः । सर्वे ।

८७ सर्वनाम्नः स्मै ७ । १ । १४ ।

अतः सर्वनाम्नो ङेः स्मै । सर्वस्मै ।

८२—ह्रस्वान्त, नद्यन्त तथा आबन्त अङ्ग से परे आम् को नुट् का आगम होता है ।

८३—नाम् परे हो तो अजन्तांग को दीर्घ होता है ।

८४—इण् कवर्ग से परे अपदान्त आदेशरूप और प्रत्ययावयव सकार को षकार होता है ।

८५—सर्वादियों की सर्वनाम संज्ञा होती है ।

८६—अदन्त सर्वनाम से परे जश् को 'शी' आदेश होता है ।

८७—अदन्त सर्वनाम से परे ङे को 'स्मै' आदेश होता है ।

८८ ङसि-ङ्योः स्मात्-स्मिनौ ७ । १ । १५ ।

अतः सर्वनाम्नः एतयोरेतौ स्तः । सर्वस्मात् ।

८९ आमि सर्वनाम्नः सुट् ७ । १ । ५२ ।

अवर्णान्तात् परस्य सर्वनाम्नो विहितस्याऽऽमः सुडागमः स्यात् । एत्व-षत्वे । सर्वेषाम् । सर्वस्मिन् । शेषं रामवत् । हरिः । पूर्व-सवर्ण-दीर्घः । हरी ।

९० जसि च ७ । ३ । १०९ ।

ह्रस्वान्तस्याऽङ्गस्य गुणः स्यात् जशि । गुणे अय् । हरयः ।

९१ ह्रस्वस्य गुणः ७ । ३ । १०८ ।

ह्रस्वान्ताऽङ्गस्य गुणः स्यात् सम्बुद्धौ । हे हरे । हरिम् । हरी । हरीन् ।

९२ शेषो घ्यसखि १ । ४ । ७ ।

शेष इति स्पष्टार्थम् । ह्रस्वौ यौ इदुतौ तदन्तं सखिवर्जं घिसंज्ञं स्यात् ।

९३ आङो नाऽस्त्रियाम् ७ । ३ । १२० ।

घेः परस्याऽऽङो ना स्याद् अस्त्रियाम् । आङिति टा संज्ञा । हरिणा हरिभ्याम् । हरिभिः ।

८८—अदन्त सर्वनाम से परे ङसि-ङि को क्रमशः स्मात्-स्मिन् आदेश होते हैं ।

८९—अवर्णान्त से परे सर्वनाम से विहित आम् को सुट् का आगम होता है ।

९०—जश् परे हो तो ह्रस्वान्त अंग को गुण होता है ।

९१—ह्रस्वान्त अङ्ग को गुण होता है सम्बुद्धि परे हो तो ।

९२—सखि-शब्द को छोड़कर ह्रस्व इकारान्त उकारान्त शब्द की घि-संज्ञा होती है ।

९३—घि-संज्ञक से परे आङ् (टा) को 'ना' आदेश होता है, स्त्रीलिंग में नहीं ।

९४ घेर्ङिति ७ । ३ । १११ ।

घि-संज्ञकस्य ङिति सुपि गुणः । हरये ।

९५ ङसि-ङसोश्च ६ । १ । ११० ।

एङो ङसि-ङसोरति पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् । हरेः । हर्योः । हरीणाम् ।

९६ अच्च घेः ७ । ३ । ११९ ।

इद्-उद्भ्यामुत्तरस्य ङेरौत् घेरच्च । वृद्धिः हरौ । हर्योः । हरिषु । एवम्—कव्यादयः ।

त्रिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः । त्रयः । त्रीन् । त्रिभिः त्रिभ्यः । त्रिभ्यः ।

९७ त्रेस्त्रयः ७ । १ । ५३ ।

त्रि-शब्दस्य त्रयाऽऽदेशः स्याद् आमि । त्रयाणाम् । त्रिषु ।

९८ सुडनपुंसकस्य १ । १ । ४३ ।

स्वादि-पञ्चवचनानि सर्वनामस्थान-संज्ञानि स्युरक्लीबस्य ।

९९ त्यदादीनामः ७ । २ । १०२ ।

एषामकारो विभक्तौ ।

द्वौ २ । द्वाभ्याम् ३ । द्वयोः २ ।

९४—घि-संज्ञक को गुण होता है ङित् सुप् परे हो तो ।

९५—एङ् से ङसि-ङस् का अकार परे हो तो पूर्वरूप एकादेश होता है ।

९६—ह्रस्व इकार और उकार से ङि को 'औ' आदेश होता है और घि को अकार अन्तादेश होता है ।

९७—त्रि-शब्द को 'त्रय' आदेश होता है आम् परे हो तो ।

९८—स्वादि पाँच वचनों की सर्वनामस्थान संज्ञा होती है नपुंसकलिंग में नहीं ।

९९—विभक्ति परे होने पर त्यदादियों को अकार अन्तादेश होता है ।

भानुः, हरिवत् ।

१—भानुः, भानू, भानवः	५—भानोः, भानुभ्याम्, भानुभ्यः
२—भानुम्, भानू, भानून्	६—भानोः, भान्वोः, भानूनाम्
३—भानुना, भानुभ्याम्, भानुभिः	७—भानौ, भान्वोः, भानुषु
४—भानवे, भानुभ्याम्, भानुभ्यः	सं०—हे भानो !, शेषं प्रथमावत्

ऋकारान्तो धातृ-शब्दः—

१०० ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः ७ । ३ । ११० ।

ऋतोऽङ्गस्य गुणो ङौ सर्वनामस्थाने च । इतिप्राप्ते—

१०१ ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च ७ । १ । ९४ ।

ऋदन्तानाम् उशनसादीनाञ्च अनङ् स्याद् असम्बुद्धौ सौ । इत्यनङ् ।

१०२ हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सु-ति-स्यपृक्तं हल् ६ । १ । ६८ ।

हलन्तात्परं दीर्घौ यौ ङ्यापौ तदन्ताच्च परं सु-ति-सीत्येतदपृक्तं हल्लुप्यते।

१०३ न-लोपः प्रातिपदिकान्तस्य ८ । २ । ७ ।

प्रातिपदिकसञ्ज्ञकं यत्पदं तदन्तस्य नस्य लोपः स्यात् । इति नस्य लोपः ।

१०४ अप्तृन्-तृच्-स्वसृ-नप्तृ-नेष्टृ-त्वष्टृ-क्षत्तृ-होतृ-पोतृ-प्रशास्तॄणाम् ६ । ४ । ११ ।

अबादीनामुपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने । धाता, धातारौ, धातारः । धातारम्, धातारौ, धातॄन् । धात्रा । धात्रे । धातृ + ङसि—

१००—ऋदन्त अङ्ग को गुण होता है ङि और सर्वनाम स्थान परे हो तो ।

१०१—ऋदन्त और उशनसादियों को 'अनङ्' होता है सम्बुद्धिभिन्न सु परे हो तो ।

१०२—हलन्त से परे दीर्घ ङीबन्त और आबन्त से परे सु-ति-सि के अपृक्त हल् का लोप होता है ।

१०३—प्रतिपदिकसंज्ञक पद के अन्त में स्थित नकार का लोप होता है ।

१०४—अबादियोंकी उपधाको दीर्घ होता है असम्बुद्धि सर्वनामस्थान परे हो तो

१०५ ऋत उत् ६ । १ । १११ ।

ऋतो ङसि–ङसोरत उद् एकादेशः । रपरः । धातुर् स् ।

१०६ रात्सस्य ८ । २ । २४ ।

रेफात् संयोगान्तस्य सस्यैव लोपो नाऽन्यस्य । रेफस्य विसर्गः । धातुः । ऋवर्णाद् नस्य णत्वं वाच्यम् । धातॄणाम् । धातरि, धात्रोः, धातृषु । हे धातः ! ।

एवम् नप्त्रादयः । नप्त्रादिग्रहणं व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थम् । तेनेह न— पिता, अनङि सुलोपः—

१०७ सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ ६ । ४ । ८ ।

नान्तस्योपधाया दीर्घः स्याद् असम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने ।

गुणे, पितरौ । पितरः । पितरम् । पितरौ, शेषं धातृवत् । एवं जामात्रादयः । ओकारान्तो गो-शब्दः—

१०८ गोतो णित् ७ । १ । ९० ।

ओकाराद् विहितं सर्वनामस्थानं णिद्वत् ।

१०९ अचो ञ्णिति ७ । १ । ९१ ।

अजन्ताङ्गस्य वृद्धिः स्याद् ञिति णिति च परे । गौः, गावौ गावः ।

१०५—ऋत् और ङसि-ङस् के अकार (दोनों) को 'उत्' एकादेश होता है ।

१०६—रेफ से परे यदि संयोगान्त का लोप हो तो सकार का ही हो, दूसरे किसी वर्ण का नहीं । (ऋवर्ण से परे न को ण् होता है) ।

१०७—सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे हो तो नान्त की उपधा को दीर्घ होता है ।

१०८—ओकारान्त से विहित सर्वनामस्थान णिद्वत् होता है ।

१०९—अजन्त अङ्ग को वृद्धि होती है ञित् णित् परे हो तो ।

११० औतोऽम् शसोः ६ । १ । ९३ ।

औतोऽम्-शसोरचि आकार एकादेशः स्यात् । गाम्, गावौ, गाः । गवा, गोभ्याम्, गोभिः । गवे, गोभ्याम्, गोभ्यः । गोः २, गवोः, गवाम् । गवि, गवोः, गोषु ।

इत्यजन्ताः पुल्लिङ्गाः

अथ अजन्ताः स्त्रीलिङ्गाः

रमा । रमा + औ—

१११ औङ आपः ७ । १ । १८ ।

आबन्ताद् अङ्गात् परस्य औङः शी स्यात् । अनुबन्धलोपे, गुणः, रमे । पूर्वसवर्ण-दीर्घे, रमाः ।

११२ सम्बुद्धौ च ७ । ३ । १०६ ।

आप एकारः स्यात् सम्बुद्धौ । "एङ्ह्रस्वाद्" इति सम्बुद्धिलोपः । हे रमे, हे रमे ! हे रमाः ! । रमाम् । रमे, रमा + शस्, "प्रथमयोः" इति पूर्वसवर्णदीर्घः, रमाः ।

११३ आङि चाऽऽपः ७ । ३ । १०५ ।

आङि ओसि च आप एकारः स्यात् । अयादेशः । रमया, रमाभ्याम्, रमाभिः ।

११०—ओकार से अम्-शस् का अकार परे हो तो पूर्व पर को आकार एकादेश होता है ।

इति अजन्त पुल्लिङ्ग

अथ अजन्त-स्त्रीलिङ्ग

१११—आबन्त अंग से परे औङ् को 'शी' होता है ।

११२—आबन्त को एकार होता है सम्बुद्धि परे हो तो ।

११३—आङ् और ओस् परे हो तो आबन्त को एकार होता है ।

११४ याडापः ७ । ३ । ११३ ।

आपो ङितो याट् । "वृद्धिरेचि" इति वृद्धिः, रमायै । रमाभ्याम् ३ । रमाभ्यः २ । रमायाः २ । रमयोः २ । रमाणाम् । रमायाम् । रमासु । एवं दुर्गादयः ।

११५ सर्वनाम्नः स्याड् ह्रस्वश्च ७ । ३ । ११४ ।

आबन्तात् सर्वनाम्नो ङितः स्याट् स्याद्, आपश्च ह्रस्वः । वृद्धिरेचि । सर्वस्यै । सर्वस्याः २ । सर्वासाम् । सर्वस्याम् । शेषं रमावत् । एवं–विश्वादय आबन्ताः । मतिः, मती, मतयः । मतिम्, मती । शसि–मतीः । मत्या, मतिभ्याम्, मतिभिः ।

११६ ङिति ह्रस्वश्च १ । ४ । ६ ।

इयङ्-उवङ्स्थानौ स्त्रीशब्दभिन्नौ नित्यस्त्रीलिङ्गौ ईदूतौ, ह्रस्वौ च इवर्णोवर्णौ स्त्रियां वा नदी-संज्ञौ स्तो ङिति । मत्यै-मतये । मत्याः २-मतेः २ ।

११७ इदुद्भ्याम् ७ । ३ । ११७ ।

इद्-उद्भ्यां नदी-संज्ञकाभ्यां परस्य ङेराम् । मत्याम्-मतौ । शेषं हरिवत् । एवं बुद्ध्यादयः ।

११८ त्रि–चतुरोः स्त्रियाँ तिसृ–चतसृ ७ । २ । ९९ ।

स्त्री-लिङ्गयोरेतयोरेतौ स्तो विभक्तौ ।

११४—आबन्त से परे ङित् वचनों को याट् का आगम होता है ।

११५—आबन्त सर्वनाम से ङित्वचनों को 'स्याट्' का आगम होता है । और आप् को ह्रस्व होता है ।

११६—इयङ्-उवङ्-स्थानी, स्त्री शब्द से भिन्न नित्यस्त्रीलिंगवाची दीर्घ ईकार ऊकार तथा ह्रस्व इकार उकार की नदीसंज्ञा विकल्प से होती है, ङित् वचन परे होने पर स्त्रीलिंग में ।

११७—नदीसंज्ञक ह्रस्व इकार उकार से परे ङि को आम् होता है ।

११८—स्त्रीलिंगवाची त्रि और चतुर् शब्द को क्रम से तिसृ-चतसृ आदेश होते हैं ।

११९ अचि र ऋतः ७ । २ । १०० ।

तिसृ-चतसृ एतयो ऋकारस्य रेफादेशः स्याद् अचि । गुणदीर्घोत्वानामपवादः । त्रि + (जस्) अस्, ऋकारस्य रेफादेशः । तिस्रः । तिस्रः । तिसृभिः । तिसृभ्यः २ । आमि नुट् ।

१२० न तिसृ-चतसृ ६ । ४ । ४ ।

एतयोर्नामि दीर्घो न । तिसृणाम् । तिसृषु । द्वि-शब्दो नित्यं द्विवचनान्तः । "त्यदादीनामः" टाप्, द्वा + औ "औङ आपः" इत्यौकारस्य शीत्वे, गुणः । द्वे २ द्वाभ्याम् ३ । द्वयोः २ । सुलोपः, गौरी, गौर्यौ, गौर्यः ।

१२१ अम्बार्थ-नद्योर्ह्रस्वः ७ । ३ । १०७ ।

अम्बार्थानां नद्यन्तानां च ह्रस्वः स्यात् सम्बुद्धौ । हे गौरि ! । गौरीम्, गौर्यौ, गौरीः । गौर्या, गौरीभ्याम् । गौर्यै, गौरीभ्यः । गौर्याः २, गौर्योः २, गौरीणाम् । गौर्याम्, गौरीषु । एवम्—नद्यादयः । लक्ष्मीः, अङ्यन्तत्वाद् न सुलोपः । शेषं गौरीवत् । सुलोपः, स्त्री । हे स्त्रि !, नद्यन्तत्वात्—ह्रस्वः ।

१२२ स्त्रियाः ६ । ४ । ७९ ।

स्त्रीशब्दस्य इयङ् स्याद् अजादौ प्रत्यये परे । स्त्रियौ, स्त्रियः ।

१२३ वाऽम्-शसोः ६ । ४ । ८० ।

अमि शसि च स्त्रिया इयङ् वा स्यात् । स्त्रियम्, स्त्रीम् ।

११९—तिसृ और चतसृ के ऋकार को रेफादेश होता है—अच् परे हो तो । यह गुण, दीर्घ तथा उत्व का अपवाद है ।

१२०—नाम् परे हो तो तिसृ-चतसृ को दीर्घ नहीं होता ।

१२१—अम्बार्थक और नद्यन्त को ह्रस्व होता है सम्बुद्धि परे हो तो ।

१२२—स्त्री शब्द को इयङ् होता है अजादि प्रत्यय परे हो तो ।

१२३—अम्-असू परे हो तो स्त्री शब्द को विकल्प से इयङ् होता है ।

इति अजन्त स्त्रीलिंग ।

स्त्रियः-स्त्रीः। स्त्रिया। स्त्रियै। स्त्रियाः २। परत्वाद् नुट्, स्त्रीणाम्। स्त्रीषु।
धेनुः, मतिवत्।

१—धेनुः, धेनू, धेनवः
२—धेनुम्, ,, धेनूः
३—धेन्वा, धेनुभ्याम् धेनुभिः।
४—धेन्वै } ,, धेनुभ्यः
धेनवे }
५—धेन्वाः धेनोः, धेनुभ्याम् धेनुभ्यः
६— ,, ,, धेन्वोः, धेनूनाम्।
७—धेन्वाम्-धेनौ, ,, धेनुषु।
सं०—हे धेनो! शेषं प्रथमावत्।

माता पितृवत्। शसि-मातृः। द्यौर्गोवत्।

इत्यजन्ताः स्त्री-लिङ्गाः

अथ अजन्ता नपुंसक-लिङ्गाः

१२४ अतोऽम् ७। १। २४।

अतोऽङ्गात् क्लीबात् स्वमोः अम् स्यात्। "अमि पूर्वः" ज्ञानम्। "एङ् ह्रस्वाद्" इति सुलोपः। हे ज्ञान!।

१२५ नपुंसकाच्च ७। १। १९।

क्लीबाद् औङः शी स्यात्। अनुबन्धलोपे, गुणः। ज्ञाने। ज्ञान+जस्-

१२६ जश्शसोः शिः ७। १। २०।

क्लीबाद् अनयोः शिः स्यात्।

१२७ शि सर्वनामस्थानम् १। १। ४२।

शि सर्वनामस्थान-संज्ञं स्यात्।

अथ अजन्त-नपुंसक-लिंग

१२४—अदन्त क्लीब से परे सु और अम् को 'अम्' होता है।

१२५—अदन्त क्लीब से परे औङ् को 'शी' होता है।

१२६—अदन्त क्लीब से परे जस्-शस् को 'शि' होता है।

१२७—'शि' की सर्वनामस्थान संज्ञा होती है।

१२८ नपुंसकस्य झलचः ७ । १ । ७२ ।

झलन्तस्य अजन्तस्य च क्लीबस्य नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने ।

१२९ मिदचोऽन्त्यात् परः १ । १ । ४७ ।

अचां मध्ये योऽन्त्यः तस्मात्परः तस्यैव अन्तावयवो मित् स्यात् । 'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ' इति उपधादीर्घः । ज्ञानानि । पुनस्तद्वत् । शेषं पुंवत् । एवं धन-वन-फलादयः ।

त्यदाद्यत्वे शीत्वे गुणः, द्वे २ । शेषं पुंवत् ।

१३० स्वमोर्नपुंसकात् ७ । १ । २३ ।

लुक् स्यात् । लुक् = लोपः । वारि ।

१३१ इकोऽचि विभक्तौ ७ । १ । ७३ ।

इगन्तस्य नुम् स्याद् अचि विभक्तौ । वारिणी । उपधादीर्घे, वारीणि । गुणे, हे वारे ! आङो ना, वारिणा । घेर्ङितीति गुणे प्राप्ते (वृद्ध्यौत्व-तृज्वद्भाव-गुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन । वारिणे । वारिणः २ । वारिणोः २ । नुमं बाधित्वा नुट्, वारीणाम् । वारिणि । हलादौ हरिवत् ।

इत्यजन्ता नपुंसकलिङ्गाः ॥

अथ हलन्ताः पुंलिङ्गाः

१३२ चतुरनडुहोराम्मुदात्तः ७ । १ । ९८ ।

अनयोराम् स्यात् सर्वनामस्थाने परे । यण्, चत्वारः । चतुरः । चतुर्भिः । चतुर्भ्यः २ ।

१२८—झलन्त और अजन्त क्लीबको नुम् होता है सर्वनामस्थान परे हो तो ।

१२९—अचों के मध्य में अन्त्य अच् से परे और उसी का अन्तावयव मित् होता है ।

१३०—सु और अम् का लुक् (लोप) होता है नपुंसकलिङ्ग में ।

१३१—इगन्त को नुम् होता है अजादि विभक्तियों में ।

इति अजन्त—नपुंसकलिंग

अथ हलन्त पुँल्लिङ्ग

१३२—चतुर् और अनडुह् को आम् होता है सर्वनामस्थान परे हो तो ।

१३३ षट्-चतुर्भ्यश्च ७ । २ । ५५ ।

एभ्य आमो नुडागमः स्यात् ।

१३४ र-षाभ्यां नो णः समानपदे ८ । ४ । १ ।

चतुर्णाम् ।

१३५ रोः सुपि ८ । ३ । १६ ।

रोरेव विसर्गः सुपि । षत्वम् । चतुर्षु ।

१३६ किमः कः ७ । २ । १०३ ।

किमः कः स्यात् विभक्तौ । कः । कौ । सर्वनामत्वात् 'जशश्शी' ततो गुणः, के । सर्ववत् ।

१३७ इदमो मः ७ । २ । १०८ ।

सौ परे । त्यदाद्यत्वाऽपवादः ।

१३८ इदोऽय् पुंसि ७ । २ । १११ ।

इदम इदोऽय् सौ पुंसि । इदम् + सु, सुलोपः, इदः अय् । अयम् । इदम् + औ, त्यदाद्यत्वे ।

१३९ अतो गुणे ६ । १ । १७ ।

अपदान्ताद् अतो गुणे पररूपमेकादेशः स्यात् । वृद्धिः । (इदौ) ।

१३३—षट्संज्ञक और चतुर शब्द से परे आम् को नुट् का आगम होता है ।

१३४—र् और ष् से परे न् को ण् होता है समानपद में ।

१३५—रु के रेफ को ही विसर्ग होता है, सुप् परे होने पर ।

१३६—किम् शब्द को 'क' आदेश होता है विभक्ति परे होने पर ।

१३७—इदम् को 'म्' होता है सु परे होने पर ।

१३८—इदम् के इद् भाग को 'अय्' होता है सु परे हो तो पुंल्लिंग में ।

१३९—अपदान्त अत् से गुण परे हो तो पररूप एकादेश होता है ।

१४० दश्च ७ । २ । १०९ ।

इदमो दस्य मः स्याद् विभक्तौ । इमौ । सर्वनामत्वात् जशः शी, गुणः । इमे । 'त्यदादेः सम्बोधनं नास्ति' इत्युत्सर्गः ।

१४१ अनाप्यकः ७ । २ । ११२ ।

ककार-रहितस्य इदम्-शब्दस्य इद्भागस्य अन स्यात् आपि विभक्तौ । (टा) आ इत्यारभ्य सुपः पकार-पर्यन्तम् 'आप्' प्रत्याहारः । इदम्+टा तदाद्यत्वं पररूपञ्च, अनादेशः, इनः, गुणः । अनेन ।

१४२ हलि लोपः ७ । २ । ११३ ।

ककार-रहितस्य इदम्-शब्दस्य इद्भागस्य लोपः स्यात् आपि हलादौ विभक्तौ । सुपि चेति दीर्घः । आभ्याम् ।

१४३ नेदमदसोरकोः ७ । १ । ११ ।

ककार-रहितयोरिदमदसोर्भिस ऐस् न । 'बहुवचने झल्येत्' इति एत्वम् । एभिः । अस्मै । एभ्यः । अस्मात् । अस्य । अनयोः २ । एषाम् । अस्मिन्, एषु । पञ्चन्-शब्दो नित्यं बहुवचनान्तः ।

१४४ ष्णान्ताः षट् १ । १ । २४ ।

षान्ता नान्ता च सङ्ख्या षट्-सञ्ज्ञा स्यात् ।

१४५ षड्भ्यो लुक् ७ । १ । २२ ।

षट्सञ्ज्ञकेभ्यः जश्शसोर्लुक् स्यात् । पञ्च । पञ्च । पञ्चभिः । पञ्चभ्यः २ । नुट्, पञ्चन्+नाम्—

१४०—इदम् के द् को म् होता है विभक्ति परे हो तो ।

१४१—ककार सहित इदम् शब्द के इद् भाग को 'अन' होता है । आप् विभक्ति परे होने पर । टा के आकार से लेकर सुप् के पकार तक आप् प्रत्याहार होता है ।

१४२—ककाररहित इदम्-शब्द के इद् भाग का लोप होता है हलादि विभक्ति परे हो तो ।

१४३—ककाररहित इदम् और अदस्-शब्द के भिस् को ऐस् नहीं होता ।

१४४—षट्संज्ञकों से परे जस्-शस् का लुक् होता है ।

१४५—नान्त की उपधा को दीर्घ होता है नाम् परे हो तो ।

१४६ नोपधायाः ६ । ४ । ७ ।

नान्तस्य उपधाया दीर्घः स्याद् नामि । नस्य लोपः, पञ्चानाम् । पञ्चसु । तत्+सु, त्यदाद्यत्वे पररूपत्वम् ।

१४७ तदोः सः सावनन्त्ययोः ७ । २ । १०६ ।

त्यदादीनां तकार-दकारयोः अनन्तयोः सः स्यात् सौ । सः, तौ, ते । यत्-शब्दस्य—यः, यौ, ये । एतत् शब्दस्य-एषः, एतौ, एते । शेषं सर्ववत् ।

१४८ ङेप्रथमयोरम् ७ । १ । २८ ।

युष्मदस्मद्भ्यां परस्य ङे इत्येतस्य प्रथमाद्वितीययोश्चामादेशः ।

१४९ त्वाहौ सौ ७ । २ । ९४ ।

अनयोर्मपर्यन्तस्य त्वाहौ आदेशौ स्तः ।

१५० शेषे लोपः ७ । २ । ९० ।

एतयोष्टिलोपः । त्वम् । अहम् ।

१५१ युवावौ द्विवचने ७ । २ । ९२ ।

द्वयोरुक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य युवावौ स्तो विभक्तौ ।

१४६—षान्त और नान्त संख्या की 'षट्' संज्ञा होती है ।

१४७—त्यदादियों के तकार दकार को, जो अन्त में न हों—सकार होता है सु परे होने पर ।

१४८—युष्मद्-अस्मद् शब्द से 'ङे' को और प्रथमा-द्वितीया विभक्ति को 'अम्' आदेश होता है ।

१४९—युष्मद्-अस्मद् के युष्म्-अस्म् भाग को 'त्व' 'अह' आदेश होते हैं सु परे हो तो ।

१५०—आत्व-यत्व के निमित्त से भिन्न विभक्ति परे हो तो युष्मद् अस्मद् की 'टि' का लोप होता है ।

१५१—युष्म् अस्म् भाग को युव, आव आदेश होते हैं दो की उक्ति में विभक्ति परे हो तो ।

१५२ प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् ७ । २ । ८८ ।

औङ्यं तयोरात्वं लोके । युवाम् । आवाम् ।

१५३ यूय-वयौ जसि ७ । २ । ९३ ।

अनयोर्मपर्यन्तस्य । यूयम् । वयम् ।

१५४ त्वमावेकवचने ७ । २ । ९७ ।

एकस्योक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य त्वमौ स्तो विभक्तौ ।

१५५ द्वितीयायां च ७ । २ । ८७ ।

अनयोरात्स्यात् । त्वाम् । माम् ।

१५६ शसो नः ७ । १ । २९ ।

आभ्यां शसो नः स्यादमोऽपवादः । युष्मान् । अस्मान् ।

१५७ आदेः परस्य १ । १ । ५४ ।

परस्य यद् विहितं तत् तस्य आदेर्बोध्यम् ।

१५८ संयोगान्तस्य लोपः ८ । २ । २३ ।

संयोगान्तं यत् पदं तदन्तस्य लोपः स्यात् ।

१५२—युष्मद्-अस्मद् को आकार होता है प्रथमा और द्वितीया का-द्विवचन परे हो तो, लोक में ।

१५३—युष्म्-अस्म् भाग को यूय वय आदेश होते हैं जस् परे हो तो ।

१५४—एकान्त की उक्ति में युष्म्-अस्म् भाग को त्व म आदेश होते हैं

१५५—युष्मद्-अस्मद् को आकार अन्तादेश होता है द्वितीया विभक्ति परे हो तो ।

१५६—युष्मद्-अस्मद् से परे शस् को 'न्' आदेश होता है ।

१५७—पर को जो आदेश कहा गया हो वह उसके आदि को होता है ।

१५८—संयोगान्त पद के अन्त का लोप होता है ।

१५९ योऽचि ७ । २ । ८९ ।

अनयोर्यकारादेशः स्यादनादेशेऽजादौ परतः । त्वया । मया ।

१६० युष्मदस्मदोरनादेशे ७ । २ । ८६ ।

अनयोरात्स्यादनादेशो हलादौ विभक्तौ । युवाभ्याम् । आवाभ्याम् । युष्माभिः । अस्माभिः ।

१६१ तुभ्य-मह्यौ ङयि ७ । २ । ९५ ।

अनयोर्मपर्यन्तस्य । टिलोपः । तुभ्यम् । मह्यम् ।

१६२ भ्यसोऽभ्यम् । ७ । १ । ३० ।

आभ्यां परस्य भ्यसोऽभ्यमादेशः स्यात् । युष्मभ्यम् । अस्मभ्यम् ।

१६३ एकवचनस्य च ७ । १ । ३२ ।

आभ्यां ङसेरत् । त्वत् । मत् ।

१६४ पञ्चम्या अत् ७ । १ । ३१ ।

आभ्यां पञ्चम्या भ्यसोऽत् स्यात् । युस्मत् । अस्मत् ।

१६५ तव-ममौ ङसि ७ । २ । ९६ ।

अनयोर्मपर्यन्तस्य तव-ममौ स्तो ङसि ।

१६६ युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश् ७ । २ । ९७ ।

तव । मम । युवयोः । आवयोः ।

१५९—युष्मद्-अस्मद् को यकार आदेश होता है अनादेश अजादि विभक्ति परे हो तो ।

१६०—युष्मद्-अस्मद् को आकार आदेश होता है अनादेश हलादि विभक्ति परे हो तो ।

१६१—युष्म्-अस्म् भाग को तुभ्य मह्य आदेश होते हैं ङे परे हो तो ।

१६२—युष्मद्-अस्मद् से परे भ्यस् को 'अभ्यम्' आदेश होता है ।

१६३—युष्मद्-अस्मद् से परे ङसि को 'अत्' होता है !

१६४—युष्मद्-अस्मद् से परे पञ्चमी के भ्यस् को 'अत्' होता है ।

१६५—युष्म्-अस्म् को तव मम आदेश होते हैं, ङस परे हो तो ।

१६६—युष्मद्-अस्मद् से परे ङस् को अश् होता है ।

१६७ साम आकम् ७ । १ । ३३ ।

आभ्यां परस्य साम आकं स्यात् । युष्माकम् । अस्माकम् । त्वयि । मयि । युवयोः । आवयोः । युष्मासु । अस्मासु ।

इति हलन्ताः पुँल्लिङ्गाः ।

अथ हलन्ताः स्त्री-लिङ्गाः

चतस्रः । चतसृणाम् । चतसृषु । 'किमः कः' कादेशे स्त्रियां टाप् 'हल्ङ्याब्भ्यो....' इति सुलोपः । का, के, काः । शेषं सर्वावत् ।

१६८ यः सौ ७ । २ । ११० ।

इदमो दस्य यः स्यात् सौ परे । इयम् । त्यदाद्यत्वम् , पररूपम् , टाप् , दस्य मः, औङः शी, गुणः । इमे । इमाः । इमाम् । अनया । हलि लोपः, आभ्याम् । आभिः । अस्यै । अस्याः । अनयोः २ । आसु । त्यदाद्यत्वं, टाप् , तदोरिति सः । सा, ते, ताः । एवम्—एषा (तदोरिति सः), एते, एताः । शेषं सर्वावत् ।

इति हलन्ताः स्त्री-लिङ्गाः ।

१६७—युष्मद्-अस्मद् से परे सुट् सहित आम् को 'आकम्' आदेश होता है ।

इति हलन्त पुंल्लिङ्ग

अथ हलन्त स्त्री-लिङ्ग

१६८—इदम् के द को व होता है सु परे हो तो ।

इति हलन्त स्त्री-लिंग

अथ हलन्ता नपुंक-लिङ्गाः

चतुर् + (जस्) शि, 'चतुरनडुहोः.....' इत्याम्, यण्, चत्वारि २। चतुर्भ्यः २। चतुर्णाम्। चतुर्षु। विभक्तेरभावात् न कादेशः, किम्, के, कानि। शेषं पुंवत्। इदम्, इमे, इमानि। शेषं पुंवत्।

स्वमोर्लुक् "नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य" इति नस्य लोपः। दण्डि, दण्डिनी, दण्डीनि। दण्डिना, दण्डिभ्याम्, दण्डिभिः। दण्डिने। दण्डिनः २। दण्डिनोः। दण्डिनाम्। दण्डिषु। हे दण्डिन्! तत्, ते, तानि। यत्, ये, यानि। शेषं पुंवत्। पयः, पयसी, पयांसि। पयसा, पयोभ्याम्, पयोभिः। पयसे। पयोभ्याम्। पयोभ्यः। पयसः, पयसोः, पयसाम्। पयसि, पयसोः, पयस्सु।

इति हलन्त-नपुंसक-लिङ्गाः।

अथ अव्यय-प्रकरणम्।

१६९ स्वरादि-निपातमव्ययम्। १। १। ३७।

१-स्वर्, २-अन्तर्, ३-प्रातर, ४-पुनर्, ५-उच्चैस्, ६-नीचैस्, ७-शनैस्, ८-युगपत्, ९-पृथक्, १०-ह्यस्, ११-श्वस्, १२-सायम्, १३-चिरम्, १४-ईषत्, १५-तूष्णीम्, १६-बहिस्, १७-स्वयम्, १८-वृथा १९-नक्तम्, २०-न, २१-वत्(ब्राह्मणवत्) २२-तिरस्, २३-अन्तरेण, २४-शम्, २५-सहसा, २६-विना, २७-नाना, २८-स्वस्ति, २९-अलम्,

---

अथ अव्यय प्रकरण

१६९—स्वरादि और निपातों की अव्यय संज्ञा होती है।

स्वर्=स्वर्ग, अन्तर्=बीच, प्रातर्=प्रातःकाल, पुनर्=फिर, उच्चैस्=ऊँचा, नीचैस्=नीचा, शनैस्=धीरे, युगपत्=एकदम, पृथक्=अलग, ह्यस्=बीता हुआ (कल), श्वस्=आने वाला (कल), सायम्=सायंकाल, चिरम्=देर, ईषत्=थोड़ा, तूष्णीम्=चुप, बहिर्=बाहर, स्वयम्=अपने आप, वृथा=व्यर्थ, नक्तम्=रात, न=नहीं, वत्=समान, (ब्राह्मणवत्=ब्राह्मण के समान), तिरस्=टेढ़ा या तिरस्कार,

३०-३१-मृषा, मिथ्या, ३२-मुधा, ३३-पुरा, ३४-मिथस्, ३५-प्रायस्, ३६-मुहुस्, ३७-३८-साकम्, सार्धम्, ३९-नमस्, ४०—मा, इति स्वरादयः (आकृतिगणोऽयम्)। अथातश्चादयोऽन्यानि चाऽव्ययानि। (च वा ह इत्यादयश्चादयः) ४१-एवम्, ४२-एव, ४३-नूनम्, ४४-भूयस्, ४५-चेत्, ४६-यावत्, ४७-तावत्, ४८-तथाहि, ४९-सुष्ठु, ५०-खलु, ५१-अकस्मात्, ५२-अग्रतः, ५३-अतः, ५४-अति, ५५-अत्र, ५६-अद्य, ५७-अधुना, ५८-अन्यत्र, ५९-अपि, ६०-अवश्यम्, ६१-सकृत्, ६२-असकृत्, ६३-आदि, ६४-इतः, ६५-इदानीम्, ६६-इह, ६७-इव, ६८-उपरि, ६९-एकदा, ७०-कथम्, ७१-कदा, ७२-किम्, ७३-किञ्चित्, ७४-कुतः, ७५-कुत्र, ७६-च, ७७-ततः, ७८-तत्र, ७९-तथा, ८०-तदा, ८१-नित्यम्, ८२-पश्चात्, ८३-पुनः, ८४-अभितस्, ८५-प्रायेण, ८६-यतः, ८७-यत्र, ८८-यथा, ८९-यदा, ९०-वरम्, ९१-शीघ्रम्, ९२-सदा, ९३-सद्यः, ९४-सम्प्रति, ९५-साम्प्रतम्, ९६-सम्यक्, ९७-सहसा, ९८-सत्यम्, ९९-समन्ततः, १००-सह, १०१-अथ

अन्तरेण = विना, शम् = कल्याण (सुख), सहसा=एकदम, विना=बिना, नाना=अनेक, स्वस्ति = कल्याण, अलम् = बस, समर्थ, मृषा=मिथ्या=झूठ, मुधा=व्यर्थ, पुरा=पहले समय, मिथस्=आपस में, प्रायस=अक्सर, मुहुस्=बार बार, साकम्=सार्धम्=साथ, नमस्=नमस्कार, मा=मत, एवम्=ऐसे, एव=हीं, नूनम्=निश्चय, भूयस्=फिर और बहुत, चेत्=यदि, यावत्=जितना, तावत्=उतना, तथाहि=जैसे कि—, सुष्ठु=ठीक, खलु=निश्चय, अकस्मात्=अचानक, अग्रतः=आगे से, अतः=इसलिये, अति=अधिक, अत्र=यहाँ, अद्य=आज, अधुना=अब, अन्यत्र = दूसरी जगह, अपि=भी, अवश्यम्=जरूर, सकृत्=एक बार, असकृत्=बारबार, आदि=आरम्भ, (वगैरह), इतः=यहाँ से, इदानीम्=अब, इह=यहाँ, इव=तरह, उपरि=ऊपर, एकदा=एकसमय, कथम्=कैसे, क्यों?, कदा=कब, किम्=क्या, क्यों, किञ्चित्=कुछ, कुतः=कहाँ से, कुत्र=कहाँ, च=और, ततः=उसके बाद, तथा=वैसे, तदा=तब, नित्यम्=सदा, पश्चात्=पीछे, पुनः=फिर, अभितः=दोनों ओर से, प्रायेण=प्रायः, यतः=क्योंकि, यत्र=जहाँ, यथा=जैसे, यदा=जब, वरम्=श्रेष्ठ (सुन्दर), शीघ्रम्=जल्दी, सदा=नित्य, सद्यः = शीघ्र, सम्प्रति=अब, साम्प्रतम्=अब, सम्यक्=ठीक, सहसा=अचानक, सत्यम्=सच, समन्ततः=चारों ओर, सह=साथ, अथ=मंगल और आरम्भ अनन्तर।

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्।
इत्यव्ययानि।

अथ विभक्त्यर्थाः (कारकाणि)

१७० प्रातिपदिकार्थ-लिङ्ग-परिमाण-वचनमात्रे प्रथमा २।३।४६।

नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः। मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योगः। प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्राद्याधिक्ये परिमाणमात्रे संख्यामात्रे च प्रथमा स्यात्। प्रादिपदिकार्थमात्रे—उच्चैः। नीचैः। कृष्णः। श्रीः। ज्ञानम्। लिङ्गमात्रे—तटः। तटी। तटम्। परिमाणमात्रे—द्रोणो व्रीहिः। वचनं—संख्या। एकः। द्वौ। बहवः।

१७१ सम्बोधने च २।३।४७।

प्रथमा स्यात्। हे राम !

१७२ कर्तुरीप्सिततमं कर्म १।४।४९।

कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्।

अव्यय का लक्षण—

जिन शब्दों के तीनों लिङ्गों की सातों विभक्तियों और तीनों वचनों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता उन्हें अव्यय कहते हैं।

इति अव्यय

अथ विभक्त्यर्थप्रकरण

१७०—प्रातिपादिकार्थमात्र में, लिंगमात्राधिक्य में, परिमाणमात्र में और संख्यामात्र में प्रथमा विभक्ति होती है।

१७१—सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति होती है।

१७२—कर्ता को क्रिया के द्वारा प्राप्त करने के लिये इष्टतम कारक की कर्म-संज्ञा होती है।

१७३ कर्मणि द्वितीया २ । ३ । २ ।

अनुक्ते कर्मणि द्वितीया स्यात् । हरिं भजति ।

१७४ स्वतन्त्रः कर्ता १ । ४ । ५४ ।

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात् ।

१७५ साधकतमं करणम् १ । ४ । ४२ ।

क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसंज्ञं स्यात् ।

१७६ कर्तृकरणयोस्तृतीया २ । ३ । १८ ।

अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात् । रामेण बाणेन हतो बालिः ।

१७७ कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् १ । ४ । ३२ ।

दानस्य कर्मणा यमभिप्रेति स सम्प्रदानसंज्ञः स्यात् ।

१७८ चतुर्थी सम्प्रदाने २ । ३ । १३ ।

विप्राय गां ददाति ।

१७९ नमः स्वस्ति-स्वाहा-स्वधाऽलं-वषड्योगाच्च २। ३। १६।

एभिर्योगे चतुर्थी । हरये नमः । प्रजाभ्यः स्वस्ति । अग्नये स्वाहा । पितृभ्यः स्वधा । अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम् । तेन दैत्येभ्यो हरिरलं प्रभुः, समर्थः, शक्त इत्यादि ।

१७३—अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है ।

१७४—क्रिया में स्वतन्त्रता से विवक्षित अर्थ की कर्तृ-सञ्ज्ञा होती है ।

१७५—क्रिया की सिद्धि में अत्यन्त उपकारक की करण संज्ञा होती है ।

१७६—अनुक्त कर्ता और करण में तृतीया विभक्ति होती है ।

१७७—दा धातु के कर्म से कर्ता जिसे सम्बद्ध करना चाहे उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है ।

१७८—सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति होता है ।

१७९—नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलं और वषट् के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है ।

१८० ध्रुवमपायेऽपादानम् १ । ४ । २४ ।

अपायः = विश्लेषस्तस्मिन्साध्ये यद् ध्रुवम् = अवधिभूतं कारकं तदपादानं स्यात् ।

१८१ अपादाने पञ्चमी २ । ३ । २८ ।

ग्रामादायाति । धावतोऽश्वात् पततीत्यादि ।

१८२ षष्ठी शेषे २ । ६ । ५० ।

कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादि-सम्बन्धः शेषस्तत्र षष्ठी । राज्ञः पुरुषः ।

१८३ आधारोऽधिकरणम् । १ । ४ । ४५ ।

कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरणं स्यात् ।

१८४ सप्तम्यधिकरणे च २ । ३ । ३६ ।

अधिकरणे सप्तमी स्यात्, चकाराद् दूरान्तिकार्थेभ्यः । औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा । कटे आस्ते । स्थाल्यां पचति । मोक्षे इच्छाऽस्ति । सर्वस्मिन्नात्माऽस्ति । वनस्य दूरे अन्तिके वा ।

इति विभक्त्यर्थाः

१८०—जहाँ अपाय (विश्लेष) साध्य हो; वहाँ ध्रुव (अवधिभूत) कारक की अपादान संज्ञा होती है ।

१८१—अपादान में पञ्चमी विभक्ति होती है ।

१८२—कारक और प्रतिपदिकार्थ से भिन्न स्वस्वामिभाव, जन्यजनकभावादि सम्बन्ध में षष्ठी होती है ।

१८३—कर्तृ-कर्म द्वारा तन्निष्ठ क्रिया के आधार की अधिकरण संज्ञा होती है ।

१८४—अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है तथा दूर अन्तिक अर्थ वाले शब्दों से ।

इति कारकप्रकरणम्

समास-प्रकरणम्

अथ तत्पुरुषः

समसनं समासः। तत्र १ प्रायेणोत्तरपदार्थ-प्रधानः तत्पुरुषः। (तत्पुरुषभेदः कर्मधारयः)। २ प्रायेणान्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिः। ३ प्रायेणोभयपदार्थ-प्रधानो द्वन्द्वः।

१८५ प्राक्कडारात्समासः २ । १ । ३ ।

अधिकारोऽयम्।

१८६ तत्पुरुषः २ । १ । २२ ।

अधिकारोऽयं प्राग् बहुव्रीहेः।

१८७ द्वितीयाश्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः २ । १ । २४ ।

द्वितीयान्तं श्रितादिभिः सुबन्तैः सह समस्यते वा, स च तत्पुरुषः। कृष्णं श्रितः—(कृष्ण अम् श्रित सु) कृष्णश्रितः। इत्यादि।

१८७ ॥ सुपो धातु-प्रातिपदिकयोः २ । ४ । ७१ ।

एतयोरवयवस्य सुपो लुक्। अमो लुक्।

१८८ कर्तृ-करणे कृता बहुलम् २ । १ । ३२ ।

कर्तरि करणे च तृतीया कृदन्तेन बहुलं समस्यते। हरिणा त्रातो—हरित्रातः। नखैर्भिन्नः—नखभिन्नः।

अथ समासेषु तत्पुरुषः

अनेक पदों का एक पद रूप हो जाना समास कहलाता है। प्रायः उत्तर पदार्थप्रधान तत्पुरुष होता है। (तत्पुरुष का ही भेद कर्म-धारय है) बहुव्रीहि प्रायः अन्यपदार्थप्रधान होता है। द्वन्द्व में प्रायः सभी पदार्थ प्रधान होते हैं।

१८५—'कडाराः कर्मधारये' इस सूत्र से पहले पहले 'समास' शब्द का अधिकार है।

१८६—बहुव्रीहि से पहले पहले 'तत्पुरुष' का अधिकार है।

१८७—श्रितादि सुबन्तों के साथ द्वितीयान्त का समास विकल्प से होता है, और उसकी तत्पुरुष संज्ञा होती है।

१८७ ॥—धातु और प्रातिपदिक के अवयव सुप् का लुक् होता है।

१८८—कर्ता और कारण में तृतीया विभक्ति का कृदन्त के साथ बहुलता से समास होता है।

१८९ चतुर्थी तदर्थार्थ-बलि-हित-सुख-रक्षितैः २ । १ । ३६ ।

चतुर्थ्यन्तं तदर्थार्थादिभिर्वा समस्यते। यूपाय दारु–यूपदारु। द्विजार्थः सूपः। भूतबलिः, गोहितम्। गोसुखम्। गोरक्षितम्।

१९० पञ्चमी भयेन २ । १ । ३७ ।

चोराद् भयं–चोरभयम्।

१९१ षष्ठी २ । २ । ३७ ।

षष्ठ्यन्तं सुबन्तेन समस्यते। राज्ञः पुरुषः—राजपुरुषः। सूर्यस्य उदयः—सूर्योदयः। क्षत्रियस्य बलं–क्षत्रियबलम्।

१९२ सप्तमी शौण्डैः २ । १ । ४० ।

सप्तम्यन्तं शौण्डादिभिः समस्यते। अक्षेषु शौण्डः अक्षशौण्डः।

१९३ तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः २ । १ । ५८ ।

समान-विभक्त्यन्तपद-विषयकः तत्पुरुषः कर्मधारय-संज्ञः स्यात्।

१९४ विशेषणं विशेष्येण बहुलम् २ । ४ । १७ ।

विशेषणं समानाधिकरणेन विशेष्येण बहुलं समस्यते। नीलम् उत्पलम्–नीलोत्पलम्। शुक्लः पटः–शुक्लपटः।

इति तत्पुरुषः।

१८९--चतुर्थ्यन्त का तदर्थादियों के साथ विकल्प से समास होता है।

१९०—पञ्चम्यन्त का भय शब्द के साथ विकल्प से समास होता है

१९१—षष्ठ्यन्त का सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है।

१९२—सप्तम्यन्त (शब्द) शौण्डादि-गण-पठित शब्दों के साथ विकल्प से समास होता है।

१९३—समान (एक) विभक्त्यन्त पदों का समास 'कर्मधारय' कहलाता है।

१९४—एकाधिकरणक विशेष्य के साथ विशेषण का बहुलता से समास होता है।

इति तत्पुरुष

अथ बहुव्रीहिः

१९५ शेषो बहुव्रीहिः २ । २ । २३ ।

अधिकारोऽयं प्राग् द्वन्द्वात् ।

१९६ अनेकमन्यपदार्थे २ । २ । २४ ।

अनेकं प्रथमान्तम् अन्यस्य पदस्यार्थे वर्तमानं वा समस्यते स बहुव्रीहिः । पीतानि अम्बराणि यस्य स पीताम्बरः। पठिता विद्या येन स पठितविद्यः ।

१९७ निष्ठा २ । २ । ३६ ।

निष्ठान्तं बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात् । योगो युक्तो येन स युक्तयोगः ।

इति बहुव्रीहिः



अथ द्वन्द्वः

१९८ चार्थे द्वन्द्वः २ । २ । २९ ।

अनेकं सुबन्तम् इतरेतरयोगरूपे चार्थे वर्तमानं वा समस्यते स द्वन्द्वः । मिलितानाम् अन्वयः=इतरेतरयोगः । रामश्च लक्ष्मणश्च—रामलक्ष्मणौ (गच्छतः) ।

अथ बहुव्रीहि

१९५—द्वन्द्व समास से पूर्व पूर्व 'बहुव्रीहि' का अधिकार है ।

१९६—अन्य पदार्थ के अर्थ में वर्तमान, अनेक प्रथमान्त सुबन्तों का विकल्प से समास होता है । वह बहुव्रीहि कहलाता है ।

१९७—बहुव्रीहि समास में निष्ठान्त (क्त क्तवतु-प्रत्यायान्त) का पूर्व-प्रयोग होता है ।

इति बहुव्रीहि

अथ द्वन्द्व

१९८—'इतरेतरयोग' रूप चकारार्थ में वर्तमान सुबन्त का विकल्प से समास होता है। उसे 'द्वन्द्व' कहते हैं ।

१९९ द्वन्द्वे घि २ । २ । ३२ ।

द्वन्द्वे घिसंज्ञं पूर्वं स्यात्। हरिहरौ।

२०० अजाद्यदन्तम् २ । २ । ३३ ।

अजादि अकारान्तं द्वन्द्वे पूर्वं स्यात्। ईशकृष्णौ।

२०१ अल्पाच्तरम् २ । २ । ३४ ।

अल्पाच्कं द्वन्द्वे पूर्वम्। शिवकेशवौ।

२०२ परवल्लिङ्गं द्वन्द्व-तत्पुरुषयोः २ । २ । २६ ।

द्वन्द्वे तत्पुरुषे च परस्य इव लिङ्गं स्यात्। मयूरी-कुक्कुटौ इमौ। कुक्कुट-मयूर्यौ इमे। तत्पुरुषे यथा—चोरभयम्।

२०३ पिता मात्रा १ । २ । ७० ।

मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते। माता च पिता च—पितरौ, मातापितरौ वा। इति द्वन्द्वः।

इति समास-प्रकरणम्

अथ तद्धिताः प्रत्ययाः

२०३ A समर्थानां प्रथमाद् वा ४ । १ । ८२ ।

इदं पदत्रयम् अधिक्रियते।

१९९—द्वन्द्व समास में घिसंज्ञक शब्द का पूर्व प्रयोग होता है।

२००—अजादि अकारान्त का द्वन्द्व में प्रयोग होता है।

२०१—अल्पाच्क शब्द का द्वन्द्व में पूर्व प्रयोग होता है।

२०२—द्वन्द्व और तत्पुरुष में परपद के समान लिंग होता है।

२०३—माता के साथ उक्ति में पिता शेष रहता है विकल्प से।

इति द्वन्द्व-प्रकरण

अथ तद्धित प्रत्यय

२०३A—इन तीनों पदों का आगे अधिकार चलता है।

२०३ B तस्यापत्यम् ४ । १ । ९२ ।

षष्ठ्यन्तात्कृतसन्धेः समर्थाद् अपत्येऽर्थे प्रत्ययाः स्युः ।

२०३ C अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् ४ । १ । १६२ ।

अपत्यत्वेन विवक्षितं पौत्रादि गोत्रसंज्ञं स्यात् ।

२०३ D गर्गादिभ्यो यञ् ४ । १ । १०५ ।

गोत्रापत्ये ।

२०३ E तद्धितेष्वचामादेः । ७ । २ । ११७ ।

ञिति णिति च तद्धितेऽचामादेरचो वृद्धिः ।

२०३ F यस्येति च ६ । ४ । १४८ ।

इकारे तद्धिते च परे भस्येवर्णावर्णयोर्लोपः । गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः । वत्सस्य गोत्रापत्यं वात्स्यः । (सुपो लुक्) ।

२०३ G तस्येदम् ४ । ३ । १२० ॥

इन्द्रस्येदम् ऐन्द्रम् । अण् प्रत्ययः ।

२४० पितृव्य मातुल-मातामह-पितामहाः ४ । २ । ३६ ।

एते निपात्यन्ते । पितुर्भ्राता-पितृव्यः । मातुर्भ्राता-मातुलः । मातुः पिता मातामहः । पितुः पिता-पितामहः । 'पितुर्भ्रातरि व्यत्'

२०३B—कृतसन्ध्यादिकार्य समर्थ षष्ठयन्त में अपत्य अर्थ से प्रत्यय होते हैं ।

२०३C—अपत्यत्वेन विवक्षित पौत्रादि की गोत्र संज्ञा होती है ।

२०३D—गर्गादि गण पठित शब्दों से गोत्रापत्य अर्थ में यञ् प्रत्यय होता है ।

२०३E—ञित् और णित् तद्धित परे रहते आदि अच् को वृद्धि होती है ।

२०३F—इकार और तद्धित परे रहते भ संज्ञक इवर्ण अवर्ण का लोप होता है ।

२०३G—षष्ठयन्त से इदम् अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं ।

२०४—पितृव्य, मातुल, मातामह, पितामह—ये शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं ।

पितृव्यः। 'मातुः—(भ्रातरि) डुलच्' 'मातुलः'। 'मातृपितृभ्यां पितरि डामहच्' इति डामहच् डिति टिलोपः। मातामहः, पितामहः।

२०५ ग्राम-जन-बन्धुभ्यस्तल् ४। २। ४३।

तलन्तं स्त्रियाम्। ग्रामता। जनता। बन्धुता।

२०६ युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च ४। ३। १।

चाच्छः। पक्षेऽण्।

२०७ आयनेयीनीयियः फ-ढ-ख-छ-घां प्रत्ययादीनाम् ७।१।२।

प्रत्ययादेः फस्य आयन्, ढस्य एय्, खस्य ईन, छस्य ईय्, घस्य इय् स्यात्। युवयोर्युष्माकं वाऽयं (छप्रत्यये) युष्मदीयः। अस्मदीयः।

२०८ तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ४। ३। २।

युष्मदस्मदोरेतावादेशौ स्तः खञि, अणि च। आदिवृद्धिः। यौष्माकीणः। आस्माकीनः। यौष्माकः। आस्माकः।

२०९ तवक-ममकावेकवचने ४। ३। ३।

एकार्थवाचिनोर्युष्मदस्मदोस्तवक-ममकौ स्तः खञि, अणि च। तावकीनः, तावकः। मामकीनः, मामकः।

२१० मध्यान्मः ४। ३। ८।

मध्यमः।

२०५—ग्राम-जन-बन्धु शब्दों से समूह अर्थ में 'तल्' प्रत्यय होता है।

२०६—युष्मत् और अस्मद् शब्दों से 'खञ्' और 'छ' प्रत्यय होता है, तथा पक्ष में अण् भी।

२०७—प्रत्यय के आदि फ को आयन्, ढ को एय्, ख को ईन्, छ को ईय् और घ को इय् होता है।

२०८—युष्मद्-अस्मद् शब्द को 'युष्माक' 'अस्माक' आदेश होते हैं, 'खञ्' और 'अण्' परे हो तो।

२०९—एकार्थवाची युष्मद्-अस्मद् को 'तवक' 'ममक' होते हैं, 'खञ्' और अण् परे हो तो।

२१०—मध्य शब्द से जातादि अर्थों में 'म' प्रत्यय होता है।

२११ तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ५ । १ । ११५ ।

ब्राह्मणेन तुल्यं ब्राह्मणवद् अधीते। क्रिया चेदिति किम्—गुणतुल्ये मा भूत्, पुत्रेण तुल्यः स्थूलः।

२१२ तत्र तस्येव ५ । १ । ११६ ।

मथुरायामिव—मथुरावत् स्रुघ्ने प्राकारः। चैत्रस्येव—चैत्रवन्मैत्रस्य गावः।

२१३ तस्य भावस्त्वतलौ ५ । १ । ११९ ।

प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारो भावः। गोर्भावो—गोत्वम्, गोता। त्वान्तं क्लीबम्। तलन्तं स्त्रियाम्।

२१४ यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ५ । २ । ३९ ।

यत् परिमाणमस्य—यावान्। तावान्। एतावान्।

२१५ किमिदंभ्यां वो घः ५ । २ । ४० ।

आभ्यां वतुप्, वकारस्य घश्च। वस्य घः, घस्य इय्।

२१६ इदं-किमोरीश्-की ६ । ३ । ९० ।

दृग्दृश्वतुषु इदम ईश्, किमः किः। "यस्येति च" इति ईकार-लोपः, इयान्। कियान्।

२१७ तस्य पूरणे डट् ५ । २ । ४८ ।

एकादशानां पूरणः—एकादशः।

२११—तुल्यार्थ में 'वति' प्रत्यय होता है, तुल्यार्थ यदि क्रिया हो।

२१२—सप्तम्यन्त और षष्ठयन्त से इव अर्थ में 'वति' प्रत्यय होता है।

२१३—भाव अर्थ में 'त्व' और 'तल्' प्रत्यय होते हैं। प्रकृतिजन्य बोध में प्रकारीभूत को भाव कहते हैं।

२१४—यत्, तत्, एतत् शब्दों से परिमाण अर्थ में 'वतुप्' प्रत्यय होता है।

२१५—किम्, इदम्-शब्द से 'वतुप्' होता और 'व' को 'घ' होता है।

२१६—दृग्-दृश-वतु प्रत्यय परे हो तो इदम् को इश् होता है। किम् को कि होता है।

२१७—पूरण अर्थ में 'डट्' प्रत्यय होता है।

२१८ नान्तादसंख्यादेर्मट् ५ । ३ । ४९ ।

डटो मडागमः । पञ्चानां पूरणः—पञ्चमः । असंख्यादेः किम्—एकादशः ।

२१९ ति विंशतेर्डिति ६ । ४ । १४२ ।

विंशतेर्भस्य तिशब्दस्य लोपो डिति परे । विंशः ।

२२० षट्-कति-कतिपय-चतुरां थुक् ५ । २ । ५१ ।

एषां थुगागमः स्याड्डटि । षण्णां पूरणः—षष्ठः । कतिथः । कतिपय-शब्दस्याऽसंख्यात्वेऽप्यत एव ज्ञापकाड्डट् । कतिपयथः । चतुर्थः ।

२२१ द्वेस्तीयः ५ । २ । ५४ ।

डटोऽपवादः । द्वयोः पूरणः—द्वितीयः ।

२२२ इग्यणः सम्प्रसारणम् १ । १ । ४५ ।

यणः स्थाने प्रयुज्यमान इक् सम्प्रसारणसंज्ञः स्यात् ।

२२३ सम्प्रसारणाच्च ६ । १ । १०८ ।

सम्प्रसारणादचि पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् ।

२२४ त्रेः संप्रसारणं च ५ । २ । ५५ ।

तीयप्रत्यये, रेफस्य ऋः, इकारस्य पूर्वरूपम्, तृतीयः ।

२१८—संख्यावाची नान्त शब्द से डट् को मट् का आगम होता है । संख्यादि शब्द को छोड़ कर ।

२१९—भ-संज्ञक विंशति शब्द की 'ति' का लोप होता है डित् परे हो तो ।

२२०—षट्-कतिपय-चतुर् शब्दों को थुक् का आगम होता है ।

२२१—द्वि-शब्द से पूरणार्थ में 'तीय' प्रत्यय होता है ।

२२२—वर्णों के स्थान में प्रयुज्यमान इक् को सम्प्रसारण कहते हैं ।

२२३—सम्प्रसारण से अच् परे हो तो पूर्वरूप एकादेश होता है ।

२२४—त्रि शब्द से 'तीय' प्रत्यय होता है पूरणार्थ में, और त्रि को सम्प्रसारण भी ।

२२५ प्राग्दिशो विभक्तिः ५ । ३ । १ ।

'दिक्शब्देभ्य' इत्यतः प्राग्वक्ष्यमाणाः प्रत्यया विभक्तिसञ्ज्ञाः स्युः ।

२२६ पञ्चम्यास्तसिल् ५ । ३ । ७ ।

पञ्चम्यन्तेभ्यः किमादिभ्यस्तसिल् वा स्यात् । किम् ङसि + तस् , सुपो धातुप्रातिपदिकयोरिति सुपो लुक् । किम्, सर्वनाम, बहुशब्दश्चेति किमादयः ।

२२७ कु तिहोः ७ । २ । १०४ ।

किमः कुः स्यात्तादौ हादौ च विभक्तौ परतः । कुतः = कस्मात् ।

२२८ इदम इश् ५ । ३ । ३ ।

इदम्-शब्दस्य इश् आदेशः स्यात् शित्त्वात् सर्वादेशः । इतः ।

२२९ अन् ५ । ३ । ५ ।

'एतद्' शब्दस्य 'अन्' आदेशः स्यात्, प्राग्दिशीये । प्राग्दिशोऽधिकारः अनेकाल्त्वात्सर्वादेशः । 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' इति नकारलोपः, अतः । अमुतः । यतः । बहुतः ।

२३० पर्यभिभ्यां च ५ । ३ । ९ ।

आभ्यां तसिल् स्यात् । परितः = सर्वत इत्यर्थः । अभितः=उभयत इत्यर्थः ।

२३१ सप्तम्यास्त्रल् ५ । ३ । १० ।

कुत्र, सुपो लुकि किम् + त्र, इत्यत्र 'कुति हो' इति 'कु' आदेशः । यत्र । तत्र । यत्र तत्र इत्यादौ विभक्तित्वात् 'त्यदादीनामः' । बहुत्र ।

२२५—'दिक्-शब्देभ्यः' से पूर्व वक्ष्यमाण प्रत्ययों की विभक्ति संज्ञा होती है ।

२२६—पञ्चम्यन्त किमादियों से 'तसिल्' प्रत्यय होता है ।

२२७—किम् को 'कु' होता है, तादि, हादि विभक्तिसंज्ञक प्रत्यय परे हो तो ।

२२८—इदम् को 'इश्' आदेश होता है; प्राग्दिशीय विभक्ति परे हो तो ।

२२९—एतत् को 'अन्' आदेश होता है प्राग्दिशीय विभक्ति परे हो तो ।

२३०—परि और अभि शब्दों से 'तसिल्' प्रत्यय होता है ।

२३१—सप्तम्यन्त से 'त्रल्' प्रत्यय होता है ।

२३२ इदमो हः ५ । ३ । ११ ।

अलोऽपवादः । 'इदम इश्' इति इश्, शित्त्वात् सर्वादेशः । इह ।

२३३ किमोऽत् ५ । ३ । १२ ।

वा-ग्रहणमपकृष्यते । सप्तम्यन्तात्किमोऽद्वा स्यात् । पक्षे त्रल् ।

२३४ क्वाति ७ । २ । १०५ ।

किमः क्वादेशः स्यादति । क्व, कुत्र ।

२३५ सर्वैकान्यकियत्तदः काले दा ५ । ३ । १५ ।

सप्तम्यन्तेभ्यः कालार्थेभ्यः स्वार्थे दा स्यात् ।

२३६ सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि ५ । ३ । ६ ।

दादौ प्राग्दिशीये सर्वस्य सो वा स्यात् । सर्वस्मिन् काले सदा, सर्वदा । अन्यदा । 'दा' प्रत्ययस्य विभक्तित्वात् 'किमः कः' कदा यदा । तदा । काले किम्-सर्वत्र देशे ।

२३७ इदमो र्हिल् ५ । ३ । १६ ।

सप्तम्यन्तात् । काले इत्येव ।

२३८ एतेतौ रथोः ५ । ३ । ४ ।

इदम्-शब्दस्य एत इत् इत्यादेशौ स्तः क्रमेण; रेफादौ थकारादौ च प्राग्दिशीये परे । अस्मिन्काले-एतर्हि । काले इत्येव ।

२३२—इदम् शब्द से 'ह' प्रत्यय होता है अन् परे हो तो ।

२३३—सप्तम्यन्त किम्-शब्द से 'अत्' प्रत्यय होता है विकल्प से ।

२३४—किम्-शब्द को 'क्व' आदेश होता है 'अत्' परे हो तो ।

२३५—सप्तम्यन्त कालार्थक सर्व-एक-अन्य आदि शब्दों से स्वार्थ में 'दा' प्रत्यय होता है ।

२३६—सर्व-शब्द को विकल्प से 'स' आदेश होता है दादि प्राग्दिशीय प्रत्यय परे हो तो ।

२३७—सप्तम्यन्त इदम्-शब्द से 'र्हिल्' प्रत्यय होता है ।

२३८—इदम्-शब्द को 'एत' और 'इत्' आदेश होते हैं क्रमशः रेफादि थकारादि प्राग्दिशीय प्रत्यय परे हो तो ।

२३९ अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम् ५ । ३ । २१ ।

कर्हि, कदा । यर्हि, यदा । तर्हि, तदा ।

२४० एतदः ५ । ३ । ५ ।

एत इत् एतौ स्तः क्रमेण; रेफादौ थादौ च प्राग्दिशीये । एतस्मिन्काले—एतर्हि ।

२४१ प्रकारवचने थाल् ५ । ३ । २३ ।

प्रकारवृत्तिभ्यः किमादिभ्यस्थाल् स्यात् स्वार्थे । "त्यदादीनामः" येन प्रकारेण—यथा । तेन प्रकारेण—तथा ।

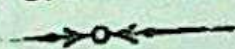
२४२ इदमस्थमुः ५ । ३ । २४ ।

थालोऽपवादः । (एतदोऽपि वाच्यः), इदम एतदश्च 'इत्' इत्यादेशः । अनेन एतेन वा प्रकारेण—इत्थम् ।

२४३ किमश्च ५ । ३ । २५ ।

केन प्रकारेण—कथम् । "किमः कः" ।

इति तद्धिताः प्रत्ययाः ।



अथ स्त्री-प्रत्यय-प्रकरणम्

२४४ स्त्रियाम् ४ । १ । ३ ।

अधिकारोऽयम् ।

२३९—किमादि से अनद्यतन में र्हिल् प्रत्यय होता है ।

२४०—एतत्-शब्द को एत' 'इत्' आदेश होते हैं रेफादि थकारादि प्राग्दिशीय विभक्ति परे हो तो ।

२४१—प्रकारार्थक किमादि-शब्दों से 'थाल्' प्रत्यय होता है स्वार्थ में ।

२४२—इदम्-शब्द से 'थमु' प्रत्यय होता है. यह 'थाल्' का अपवाद है । (वा.-एतद् से भी 'थमु' प्रत्यय होता है) ।

२४३—किम्-शब्द से प्रकारार्थ में 'थमु' प्रत्यय होता है ।

इति तद्धित प्रत्यय

अथ स्त्री प्रत्यय प्रकरण

२४४—'स्त्रियाम्' यह अधिकार है ।

२५६ इतो मनुष्यजातेः ४ । १ । ६५ ।

मनुष्यजातिवाचकादिकारान्तात् स्त्रियां ङीप् स्यात् । दाक्षी ।

२५७ शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ४ । १ । ७३ ।

शार्ङ्गरवादेरञन्ताच्च जातिवाचिनो ङीन् स्यात् । शार्ङ्गरवी । बैदी । (नृनरयोर्वृद्धिश्च) नारी ।

२५८ यूनस्तिः ४ । १ । ७७ ।

युवन् शब्दात् स्त्रियां तिप्रत्ययः स्यात् । युवतिः ।

इति स्त्रीप्रत्ययाः ।

(अथोत्तरार्द्धम्)

अथ तिङन्ते भ्वादयः

२५९ धातोः ३ । १ । ९१ ।

इत्यधिकारः, आतृतीयाऽध्याय-समाप्तेः ।

२६० भूवादयो धातवः १ । ३ । १ ।

क्रिया-वाचिनो भ्वादयो धातु-सञ्ज्ञाः स्युः ।

लट् । लिट् । लुट् । लृट् । लेट् । लोट् । लङ् । लिङ् । लुङ् । लृङ् । एषु पञ्चमो लकारश्छन्दोमात्रगोचरः ।

२५६—स्त्रीत्व द्योत्य होतो मनुष्यजातिवाचक इकारान्त से 'ङीप्' होता है ।

२५७—शार्ङ्गरवादि तथा अञन्त जातिवाचक से 'ङीन्' होता है ।

(नृ और नर शब्द को वृद्धि भी होती है)

२५८—युवन् शब्द से स्त्रीत्व द्योत्य हो तो ति प्रत्यय होता है ।

इति स्त्रीप्रत्यय-प्रकरण

अथ भ्वादिगण

२५९—'धातोः' यह अधिकार है, तीसरे अध्याय की समाप्ति तक ।

२६०—क्रियावाची भू आदि धातुसञ्ज्ञक होते हैं ।

२६१ लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः ३ । ४ । ६९ ।

लकाराः सकर्मकेभ्यः कर्मणि कर्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भावे कर्तरि च ।

२६२ वर्तमाने लट् ३ । २ । १२३ ।

वर्तमानक्रियावृत्तेर्धातोर्लट् स्यात् । अटावितौ । उच्चारणसामर्थ्याल्लस्य नेत्त्वम् । १--भू सत्तायाम् । कर्तृविवक्षायां भू ल इति स्थिते ।

२६३ तिप्-तस्-झि-सिप्-थस्-थ-मिप्-वस्-मस्-ताऽऽतां-झ-थासाऽऽथांध्वमिड्-वहि-महिङ् ३ । ४ । ७८ ।

एतेऽष्टादश लादेशाः स्युः ।

२६४ लः परस्मैपदम् १ । ४ । ९९ ।

लादेशाः परस्मैपदसंज्ञाः स्युः ।

२६५ तङानावात्मनेपदम् १ । ४ । १०० ।

तङ्प्रत्याहारः शानच्कानचौ चात्मनेपदसंज्ञाः स्युः । पूर्वसंज्ञाऽपवादः ।

२६६ अनुदात्तङित आत्मनेपदम् १ । ४ । १२ ।

अनुदात्तेतो ङितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात् ।

२६७ स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले १ । ३ । ७२ ।

स्वरितेतो ञितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात्कर्तृगामिनि क्रियाफले ।

२६१—सकर्मक धातुओं से कर्म और कर्ता में, अकर्मक धातुओं से भाव और कर्ता में लकार होते हैं ।

२६२—वर्तमानकालिक क्रियावृत्ति धातु से लट् लकार होता है ।

२६३—लकार के स्थान में तिप् आदि अठारह आदेश होते हैं ।

२६४—लकार के स्थान में होने वाले आदेशों की परस्मैपद संज्ञा होती है ।

२६५—तङ् प्रत्याहार और शानच्-कानच् की आत्मनेपद संज्ञा होती है ।

२६६—अनुदात्तेत् और ङित् धातु में आत्मनेपद होता है ।

२६७—स्वरितेत् और ञित् धातु से कर्तृगामी क्रियाफल होने पर आत्मनेपद होता है ।

२६८ शेषात्कर्तरि परस्मैपदम् १ । ३ । ७८ ।
आत्मनेपदनिमित्तहीनाद्धातोः कर्तरि परस्मैपदं स्यात् ।

२६९ तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथम-मध्यमोत्तमाः १ । ४ । १०१ ।
तिङ उभयोः पदयोस्त्रयस्त्रिकाः क्रमादेतत्संज्ञाः स्युः ।

२७० तान्येकवचन-द्विवचन-बहुवचनान्येकशः १ । ४ । १०२ ।
लब्धप्रथमादिसंज्ञानि तिङस्त्रीणि त्रीणि (वचनानि) प्रत्येकमेकवचनादिसंज्ञानि स्युः ।

२७१ युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः १ । ४ । १०५ ।
तिङ्वाच्यकारकवाचिनि (=तिङा वाच्यं यत् कारकं कर्तृरूपं कर्मरूपं वा तद्वाचके) युष्मदि प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमाने च मध्यमः ।

२७२ अस्मद्युत्तमः १ । ४ । १०७ ।
तथाभूतेऽस्मद्युत्तमः ।

२६८—आत्मनेपद-निमित्त- हीन धातु से कर्ता में परस्मैपद होता है ।
२६९—तिङ् के आत्मनेपद और परस्मैपद सम्बन्धी तीन-तीन त्रिकों की क्रम से प्रथम, मध्यम, उत्तम (पुरुष) संज्ञा होती है ।
२७०—प्राप्त प्रथमादिसंज्ञक त्रिकों के तीन वचनों की क्रम से एकवचन, द्विवचन, बहुवचन संज्ञा होती है ।

तिङ्

परस्मैपद				आत्मनेपद			
पुरुषः	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०	पुरुषः	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	तिप्,	तस्,	झि	प्र० पु०	त	आताम्,	झ
म० पु०	सिप्,	थस्,	थ	म० पु०	थास्,	आथाम्,	ध्वम्
उ० पु०	मिप्,	वस्,	मस्,	उ० पु०	इट्,	वहिं,	महि(ङ्)

२७१—तिङ् वाच्य-कारकवाची युष्मद् शब्द के प्रयुज्यमान तथा अप्रयुज्यमान होने पर धातु से मध्यमपुरुष होता है ।
२७२—अस्मद् शब्द के प्रयुज्यमान तथा अप्रयुज्यमान होने पर उत्तम पुरुष होता है ।

२७३ शेषे प्रथमः १ । ४ । १०८ ।

मध्यमोत्तमयोरविषये प्रथमः स्यात् । भू ति, इति जाते ।

२७४ तिङ् शित् सार्वधातुकम् ३ । ४ । ११३ ।

तिङः शितश्च धात्वधिकारोक्ता एतत्संज्ञाः स्युः ।

२७५ कर्तरि शप् ३ । १ । ६८ ।

कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे धातोः शप् । (अयं विकरणो धातुप्रत्यय-मध्यपाती) ।

२७६ सार्वधातुकार्धधातुकयोः ७ । ३ । ८४ ।

अनयोः परयोरिगन्ताङ्गस्य गुणः । अवादेशः । भवति । भवतः ।

२७७ झोऽन्तः ७ । १ । ३ ।

प्रत्ययावयवस्य झस्यान्तादेशः । अतो गुणे । भवन्ति । भवसि । भवथः । भवथ ।

२७८ अतो दीर्घो यञि ७ । ३ । १०१ ।

अतोऽङ्गस्य दीर्घो यञादौ सार्वधातुके । भवामि । भवावः । भवामः । स भवति । तौ भवतः । ते भवन्ति । त्वं भवसि । युवां भवथः । यूयं भवथ । अहं भवामि । आवां भवावः । वयं भवामः ।

२७९ परोक्षे लिट् ३ । २ । ११५ ।

भूतानद्यतनपरोक्षार्थवृत्तेर्धातोर्लिट् स्यात् । लस्य तिबादयः ।

२७३—मध्यम, उत्तम के अविषय में प्रथम पुरुष होता है ।

२७४—धात्वधिकार में पठित तिङ् और शित् की सार्वधातुक संज्ञा होती है ।

२७५—कर्ता-अर्थक सार्वधातुक परे हो तो धातु से शप् होता है ।

२७६—सार्वधातुक और आर्धधातुक परे हो तो इगन्त अंग को गुण होता है ।

२७७—प्रत्ययावयव झ को अन्त आदेश होता है ।

२७८—अदन्त अंग को दीर्घ होता है यञादि सार्वधातुक परे हो तो ।

२७९—भूत अनद्यतन परोक्षार्थवृत्ति धातु से लिट् लकार होता है ।

२८० परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः ३ । ४ । ८२ ।

लिटस्तिबादीनां नवानां णलादयः स्युः । तिपो णल्, तसः अतुस्, झेः उस्, सिपः थल्, थसः अथुस्, थस्य अ, मिपो णल्, वसः व, मसः म । भू अ, इति स्थिते ।

२८१ भुवो वुग् लुङ्-लिटोः ६ । ४ । ८८ ।

भुवो वुगागमः स्यात् लुङ्लिटोरचि ।

२८२ लिटि धातोरनभ्यासस्य ६ । १ । ८ ।

लिटि परे अनभ्यास-धात्वयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तः, आदि, भूतादचः परस्य तु द्वितीयस्य । वुक्सहितस्य भुवो द्वित्वम् । भूव् भूव् अ, इति स्थिते ।

२८३ पूर्वोऽभ्यासः ६ । १ । ४ ।

अत्र ये द्वे विहिते तयोः पूर्वोऽभ्याससंज्ञः स्यात् ।

२८४ हलादिः शेषः ७ । ४ । ६० ।

अभ्यासस्यादिर्हल् शिष्यते, अन्ये हलो लुप्यन्ते । इति वलोपः ।

२८५ ह्रस्वः ७ । ४ । ५९ ।

अभ्यासस्याचो ह्रस्वः स्यात् ।

२८०—लिट् के स्थान में तिप् आदि नौ को णल् आदि नौ आदेश होते हैं ।

२८१—भू धातु को 'वुक्' का आगम होता है लुङ् और लिट् का अच् परे हो तो ।

२८२—अनभ्यास धातु के प्रथम अवयव एकाच् को द्वित्व होता है । आदि-भूत अच् से परे तो द्वितीय अवयव एकाच् को द्वित्व होता है ।

२८३—छठे अध्याय के द्वित्व प्रकरण में पहले की अभ्यास संज्ञा होती है ।

२८४—अभ्यास का आदि हल् शेष रहता है अन्य हलों का लोप होता है ।

२८५—अभ्यास के अच् को ह्रस्व होता है ।

२८६ भवतेरः ७ । ४ । ७३ ।

भवतेरभ्यासस्योकारस्य अः स्याल्लिटि ।

२८७ अभ्यासे चर्च ८ । ४ । ५४ ।

अभ्यासे झलां चरः स्युर्जशश्च । झलां जशः खयां चर इति विवेकः । बभूव । बभूवतुः । बभूवुः ।

२८८ लिट् च ३ । ४ । ११५ ।

लिडादेशस्तिङार्धधातुकसंज्ञः ।

२८९ आर्धधातुकस्येड् वलादेः ७ । २ । ३५ ।

वलादेरार्धधातुकस्येडागमः स्यात् । बभूविथ । बभूवथुः । बभूव । बभूव । बभूविव । बभूविम ।

२९० अनद्यतने लुट् ३ । ३ । १५ ।

भविष्यत्यनद्यतनेऽर्थे धातोर्लुट् ।

२९१ स्यतासी लृ-लुटोः ३ । १ । ३३ ।

धातोः स्यतासी एतौ प्रत्ययौ स्तो लृलुटोः परतः । शबाद्यपवादः । लृ इति लृङ्-लृटोर्ग्रहणम् ।

२९२ आर्धधातुकं शेषः ३ । ४ । ११४ ।

तिङ् शिद्भ्योऽन्यो धातोरिति विहितः प्रत्यय एतत्संज्ञः स्यात् । इट् ।

२८६—भू-धातु के अभ्यास के उकार को अकार होता है लिट् परे हो तो ।

२८७—अभ्यास में झलों को जश् और खयों को चर् होता है ।

२८८—लिडादेश तिङ् की आर्धधातुक संज्ञा होती है ।

२८९—वलादि आर्धधातुक को इट् का आगम होता है ।

२९०—अनद्यतन भविष्यत् अर्थ में धातु से लुट् होता है ।

२९१—धातु से स्य और तास् प्रत्यय होते हैं लृङ्-लृट् और लुट् परे हो तो

२९२—तिङ् शित् से भिन्न धातु से विहित प्रत्यय की आर्धधातुक संज्ञा होती है ।

२९३ लुटः प्रथमस्य डारौरसः २ । ४ । ८५ ।

डित्त्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः । भविता ।

२९४ तासस्त्योर्लोपः ७ । ४ । ५० ।

तासेरस्तेश्च लोपः स्यात्सादौ प्रत्यये परे ।

२९५ रि च ७ । ४ । ५१ ।

रादौ प्रत्यये तासेरस्तेश्च सस्य लोपः । भवितारौ । भवितारः । भवितासि । भवितास्थः । भवितास्थ । भवितास्मि । भवितास्वः । भवितास्मः ।

२९६ लृट् शेषे च ३ । ३ । १३ ।

भविष्यदर्थाद्धातोर्लृट् क्रियार्थायां क्रियायां सत्यामसत्यां वा । स्य इट् । भविष्यति । भविष्यतः । भविष्यन्ति । भविष्यसि । भविष्यथः । भविष्यथ । भविष्यामि । भविष्यावः । भविष्यामः ।

२९७ लोट् च ३ । ३ । १६२ ।

विध्याद्यर्थेषु धातोर्लोट् ।

२९८ आशिषि लिङ्-लोटौ ३ । ३ । १७३ ।

२९९ एरुः ३ । ४ । ८६ ।

लोट इकारस्य उः । भवतु ।

२९३—लुट् के प्रथम पुरुष के तिप्, तस्, झि को क्रम से डा, रौ, रस आदेश होते हैं।

२९४—तास् और अस् के स का लोप होता है सादि प्रत्यय परे हो तो ।

२९५—तास् के स का लोप होता है रादि प्रत्यय परे हो तो ।

२९६—भविष्यत् अर्थ में धातु से लृट् होता है क्रियार्थक क्रिया के होने न होने पर ।

२९७—विध्यादि अर्थों में धातु से लोट् होता है ।

२९८—आशीर्वाद अर्थ में धातु से लिङ् और लोट् लकार होते हैं ।

२९९—लोट् के इ को उ आदेश होता है ।

३०० तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्तरस्याम् ७ । १ । ३५ ।

आशिषि तुह्योस्तातङ् वा । परत्वात्सर्वादेशः । भवतात् ।

३०१ लोटो लङ्वत् ३ । ४ । ८५ ।

लोटस्तामादयः सलोपश्च ।

३०२ तस्थस्थमिपां तांतंतामः ३ । ४ । १०१ ।

ङितश्चतुर्णां तामादयः क्रमात्स्युः । भवताम् । भवन्तु ।

३०३ सेर्ह्यपिच्च ३ । ४ । ८७ ।

लोटः सेर्हिः, सोऽपिच्च ।

३०४ अतो हेः ६ । ४ । १०५ ।

अतः परस्य हेर्लुक् । भव, भवतात् । भवतम् । भवत ।

३०५ मेर्निः ३ । ४ । ८९ ।

लोटो मेर्निः स्यात् ।

३०६ आडुत्तमस्य पिच्च ३ । ४ । ९२ ।

लोडुत्तमस्याट् स्यात् पिच्च । हिन्योरुत्वं न, इत्वोच्चारणासामर्थ्यात् ।

३०७ नित्यं ङितः ३ । ४ । १९ ।

सकारान्तस्य ङिदुत्तमस्य नित्यं लोपः । 'अलोऽन्त्यस्य' इति सस्य लोपः । भवाव । भवाम ।

३००—आशीर्वाद अर्थ में तु और हि को तातङ् होता है विकल्प से ।

३०१—लोट लकार में लङ् के समान कार्य होते हैं ।

३०२—ङित् सम्बन्धी तस्-थस्-थ मिप् को क्रम से ताम् तम्-त-अम् आदेश होते हैं ।

३०३—लोट् सम्बन्धी सि को हि होता है ।

३०४—अदन्त से परे हि का लुक् होता है ।

३०५—लोट् सम्बन्धी मि को नि आदेश होता है ।

३०६—लोट् सम्बन्धी उत्तमपुरुष को आट् का आगम होता है, और वह पित् होता है ।

३०७—ङित् सकारान्त उत्तम पुरुष का (के स का) नित्य लोप होता है ।

३०८ अनद्यतने लङ् ३ । २ । १११ ।

अनद्यतनभूतार्थवृत्तेर्धातोर्लङ् स्यात् ।

३०९ लुङ्-लङ्-लृङ्क्ष्वडुदात्तः ६ । ४ । ७१ ।

एष्वङ्गस्याऽट् स्यात् ।

३१० इतश्च ३ । ४ । १०० ।

ङितो लस्य परस्मैपदमिकारान्तं यत्तदन्तस्य लोपः । अभवत् । अभवताम् । अभवन् । अभवः । अभवतम् । अभवत । अभवम् । अभवाव । अभवाम ।

३११ विधि-निमन्त्रणामन्त्रणाधीष्ट-संप्रश्न-प्रार्थनेषु लिङ् ३ । ३ । १६१ ।

एष्वर्थेषु धातोर्लिङ् ।

३१२ यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ३ । ४ । १०३ ।

लिङः परस्मैपदानां यासुडागमो ङिच्च ।

३१३ लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य ७ । २ । ७९ ।

सार्वधातुकलिङोऽनन्त्यस्य सस्य लोपः । इति प्राप्ते ।

३१४ अतो येयः ७ । २ । ८० ।

अतः परस्य सार्वधातुकावयवस्य 'यास्' इत्यस्य इय् । गुणः ।

३०८—अनद्यतन भूतार्थवृत्ति धातु से लङ् लकार होता है ।

३०९—लुङ्, लङ्, लृङ् परे होने पर अंग को अट् का आगम होता है, वह उदात्त होता है ।

३१०—ङित् लकार सम्बन्धी इकारान्त परस्मैपद के इकार का लोप होता है ।

३११—प्रेरणा, निमन्त्रण, आमन्त्रण, सत्कारपूर्वक व्यापार, संप्रश्न और प्रार्थना इन अर्थों में धातु से लिङ् लकार होता है ।

३१२—लिङ् सम्बन्धी परस्मैपद को यासुट् का आगम होता है, और वह उदात्त और ङित् होता है ।

३१३—सार्वधातुक लिङ् के अन्त्य सकार का लोप होता है ।

३१४—अत् से परे सार्वधातुक के अवयव यास् को इय् होता है ।

३१५ लोपो व्योर्वलि ६ । १ । ६६ ।

भवेत् । भवेताम् ।

३१६ झेर्जुस् ३ । ४ । १०८ ।

लिङो झेर्जुस् स्यात् । भवेयुः । भवेः । भवेतम् । भवेत । भवेयम् । भवेव । भवेम ।

३१७ लिङाशिषि ३ । ४ । ११६ ।

आशिषि लिङस्तिङार्धधातुकसंज्ञः स्यात् ।

३१८ किदाशिषि ३ । ४ । १०४ ।

आशिषि लिङो यासुट् कित् ।

३१९ स्कोः संयोगाद्योरन्ते च ८ । २ । २९ ।

पदान्ते झलि च यः संयोगः तदाद्योः स्कोर्लोपः ।

३२० क्ङिति च १ । १ । ५ ।

गित्किन्ङिन्निमित्ते इग्लक्षणे गुणवृद्धी न स्तः । भूयात् । भूयास्ताम् । भूयासुः । भूयाः । भूयास्तम् । भूयास्त । भूयासम् । भूयास्व । भूयास्म ।

३२१ लुङ् ३ । २ । ११० ।

भूतार्थे धातोर्लुङ् स्यात् ।

३१५—यकार वकार का लोप होता है वल् परे हो तो ।

३१६—लिङ् सम्बन्धी झि को जुस् होता है ।

३१७—आशीर्वाद अर्थ में लिङ् स्थानिक तिङों की 'आर्धधातुक' संज्ञा होती है ।

३१८—आशीर्वाद अर्थ में लिङ् का यासुट् कित् होता है ।

३१९—पदान्त में और झल् परे होने पर संयोग के आदि सकार, ककार का लोप होता है ।

३२०—गित्, कित्, ङित् निमित्तक इग्लक्षण गुण और वृद्धि नहीं होते ।

३२१—भूतार्थक धातु से लुङ् लकार होता है ।

३२२ च्लि लुङि ३ । १ । ४३ ।

शबाद्यपवादः ।

३२३ च्लेः सिच् ३ । १ । ४४ ।

इचावितौ ।

३२४ गाति-स्था-घु-पा-भूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु २ । ४ । ७७ ।

एभ्यः सिचो लुक् स्यात् । गापाविहेणादेश-पिबती गृह्यते ।

३२५ भूसुवोस्तिङि ७ । ३ । ८८ ।

भू-सू एतयोः सार्वधातुके तिङि परे गुणो न । अभूत् । अभूताम् । अभूवन् । अभूः । अभूतम् । अभूत अभूवम् । अभूव । अभूम ।

३२६ लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ ३ । ३ । ३ ।

हेतुहेतुमद्भावादि लिङ् निमित्तं तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ् स्यात्, क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम् । अभविष्यत् । अभविष्यताम् । अभविष्यन् । अभविष्यः । अभविष्यतम् । अभविष्यम् । अभविष्याव । अभविष्याम । वृष्टिश्चेदभविष्यत्तदा सुभिक्षमभविष्यत् । इत्यादि ज्ञेयम् ।

गद व्यक्तायां वाचि ॥ २ ॥ गदति, गदतः, गदन्ति । गदसि, गदथः, गदथ । गदामि, गदावः, गदामः ।

३२७ कुहोश्चुः ७ । ४ । ६२ ।

अभ्यासकवर्गहकारयोश्चवर्गादेशः ।

३२२—धातु से च्लि होता है लुङ् परे हो तो ।

३२३—च्लि को सिच् आदेश होता है ।

३२४—गा, स्था, घुसंज्ञक, पा और भू धातु से परे सिच् को लुक् होता है ।

३२५—भू और सू धातु को सार्वधातुक तिङ् परे हो तो गुण नहीं होता ।

३२६—हेतु-हेतुमद्भावादि जो लिङ् के निमित्त, उन अर्थों में भविष्यत्कालिक क्रियावाची धातु से लृङ् लकार होता है क्रिया की असिद्धि गम्यमान हो तो ।

३२७—अभ्यास के कवर्ग और हकार को चवर्ग आदेश होता है ।

३२८ अत उपधायाः ७ । २ । ११६ ।

उपधाया अतो वृद्धिः स्यात् ञ्ञिति णिति च प्रत्यये परे। जगाद। जगदतुः। जगदुः। जगदिथ। जगदथुः। जगद।

३२९ णलुत्तमो वा ७ । १ । ९१ ।

उत्तमो णल् वा णित्स्यात्। जगाद। जगदिव। जगदिम। गदिता, गदितारौ, गदितारः। गदितासि, गदितास्थः, गदितास्थ। गदितास्मि, गदितास्वः, गदितास्मः। गदिष्यति, गदिष्यतः, गदिष्यन्ति। गदिष्यसि, गदिष्यथः, गदिष्यथ। गदिष्यामि, गदिष्यावः, गदिष्यामः। गदतु-गदतात्, गदताम्, गदन्तु। गद-गदतात्, गदतम्, गदत। गदानि, गदाव, गदाम। अगदत्, अगदताम्, अगदन्। अगदः, अगदतम्, अगदत। अगदम्, अगदाव, अगदाम। गदेत्, गदेताम्, गदेयुः। गदेः, गदेतम्, गदेत। गदेयम्, गदेव, गदेम। गद्यात्, गद्यास्ताम्, गद्यासुः। गद्याः, गद्यास्तम्, गद्यास्त। गद्यासम्, गद्यास्व, गद्यास्म।

३२९ अस्तिसिचोऽपृक्ते ७ । ३ । ९६ ।

विद्यमानात् सिचोऽस्तेश्च परस्यापृक्तस्य हल ईडागमः।

३२९ इट ईटि ८ । २ । २८ ॥

इटः परस्य सस्य लोपः स्याद् ईटि परे।

३२८—उपधा के अकार को वृद्धि होती है ञित्, णित् प्रत्यय परे हो तो।

३२९—उत्तम पुरुष का 'णल्' विकल्प से णित् होता है।

३२९—विद्यमान सिच् और अस्ति से परे अपृक्त हल् को ईट् का आगम होता है॥

३२९—इट् से परे स का लोप होता है ईट् परे रहते॥

३३० अतो हलादेर्लघोः ७ । २ । ७ ।

हलादेर्लघोरकारस्य वृद्धिर्वेडादौ परस्मैपदे सिचि । अगादीत्, अगादिष्टाम्, अगादिषुः । अगादीः, अगादिष्टम्, अगादिष्ट । अगादिषम्, अगादिष्व, अगादिष्म । वृद्ध्यभावे, अगदीत् । अगदिष्यत् । अगदिष्यताम्, अगदिष्यन् । अगदिष्यः अगदिष्यतम्, अगदिष्यत । अगदिष्यम्, अगदिष्याव, अगदिष्याम ।

३३० सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च ३ । ४ । १०९ ॥

सिचोऽभ्यस्ताद् विदेश्च ङित्सम्बन्धिनो झेर्जुस् ।

एध वृद्धौ ॥ २ ॥

३३१ टित आत्मनेपदानां टेरे ६ । ४ । ७९ ।

टितो लस्यात्मनेपदानां टेरेत्वम् । एधते ।

३३२ आतो ङितः ७ । २ । ८१ ।

अतः परस्य ङितामाकारस्य इय् स्यात् । यलोपः । गुणः । एधेते । एधन्ते ।

३३३ थासः से ३ । ४ । ८० ।

टितो लस्य थासः से स्यात् । एधसे, एधेथे, एधध्वे । अतो गुणे । एधे । एधावहे । एधामहे ।

३३४ इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः ३ । १ । ३६ ।

ईजादिर्यो धातुर्गुरुमानृच्छत्यन्यस्तत आम् स्याल्लिटि ।

३३०—हलादि लघु अकार को विकल्प से वृद्धि होती है इडादि परस्मैपद सिच् परे हो तो ।

३३०—सिच् अभ्यस्त तथा विद् से परे ङित्सम्बन्धी झि को जुस् होता है ॥

३३१—टित् लकारों की आत्मनेपदसम्बन्धी टि को 'एत्व' होता है ।

३३२—अकार से परे ङित् के 'आ' को 'इय्' होता है ।

३३३—टित् लकार के 'थास्' को 'से' आदेश होता है ।

३३४—इजादि गुरुमान् धातु से ऋच्छति को छोड़कर 'आम्' होता है !

३३५ आम्प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य १ । ३ । ६३ ।

आम्प्रत्ययो यस्मादित्यतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः । आम्प्रकृत्या तुल्यमनुप्रयुज्यमानात् कृञोऽप्यात्मनेपदम् ।

३३६ लिटस्तझयोरेशिरेच् ३ । ४ । ८१ ।

लिडादेशयोस्तझयोरेशिरेजेतौ स्तः । एधाञ्चक्रे । एधाञ्चक्राते । एधाञ्चक्रिरे । एधाञ्चकृषे । एधाञ्चक्राथे ।

३३६ एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् ७ । २ । १० ॥

उपदेशे यो धातुरेकाजनुदात्तश्च ततः परस्यार्धधातुकस्येण् न ।

३३७ इणः षीध्वं-लुङ्-लिटां धोऽङ्गात् ८ । ३ । ७८ ।

इण्णन्तादङ्गात्परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य ढः स्यात् । एधाञ्चकृढ्वे । एधाञ्चक्रे । एधाञ्चकृवहे । एधाञ्चकृमहे । एधाम्बभूव । एधामास । एधिता । एधितारौ । एधितारः । एधितासे । एधितासाथे ।

३३८ धि च ८ । २ । २५ ।

धादौ प्रत्यये परे सस्य लोपः । एधिताध्वे ।

३३९ ह एति ७ । ४ । ५२ ।

तासस्त्योः सस्य हः स्यादेति परे । एधिताहे । एधितास्वहे । एधितास्महे । एधिष्यते । एधिष्येते । एधिष्यन्ते । एधिष्यसे । एधिष्येथे । एधिष्यध्वे । एधिष्ये । एधिष्यावहे । एधिष्यामहे ।

३३५—अनुप्रयुज्यमान कृञ् धातु से आम्प्रकृति के तुल्य आत्मनेपद होता है ।

३३६—लिट् के 'त' और 'झ' को क्रमशः 'एश्' 'इरेच्' आदेश होते हैं ।

३३६—उपदेश में जो धातु एकाच् और अनुदात्त है उससे परे आर्धधातुक को इट् नहीं होता ॥

३३७—इणन्त अंग से परे षी ध्वं लुङ् और लिट् के धकार को ढकार होता है ।

३३८—धादि प्रत्यय परे हो तो स का लोप होता है ।

३३९—तास् और अस्ति के स को ह होता है एकार परे हो तो ।

३४० आमेतः ३ । ४ । ९० ।

लोट एकारस्याम् स्यात् । एधताम् । एधेताम् । एधन्ताम् ।

३४१ सवाभ्यां वामौ ३ । ४ । ९१ ।

सवाभ्यां परस्य लोडेतः क्रमाद्वामौ स्तः । एधस्व । एधेथाम् । एधध्वम् ।

३४२ एत ऐ ३ । ४ । ९३ ।

लोडुत्तमस्य एत ऐ स्यात् । एधै । एधावहै । एधामहै ।

३४३ आडजादीनाम् ६ । ४ । २७ ।

अजादेरङ्गस्याऽऽट् स्याद् लुङ्-लङ्-लृङ्षु ।

३४४ आटश्च ६ । १ । ९० ।

आटोऽचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । ऐधत । ऐधेताम् । ऐधन्त । ऐधथाः । ऐधेथाम् । ऐधध्वम् । ऐधै । ऐधावहि । ऐधामहि ।

३४५ लिङः सीयुट् ३ । ४ । १०२ ।

सलोपः । एधेत । एधेयाताम् ।

३४६ झस्य रन् ३ । ४ । १०५ ।

लिङो झस्य रन् स्यात् । एधेरन् । एधेथाः । एधेयाथाम् । एधेध्वम् ।

३४०—लोट् की ए को 'आम्' होता है ।

३४१—'स' और 'व' से परे लोट् के एकार को क्रमशः 'व' और 'अम्' होते हैं ।

३४२—लोट् के उत्तम पुरुष के एकार को ऐकार आदेश होता है ।

३४३—अजादि अंग को 'आट्' का आगम होता है लुङ्, लङ् और लृङ् परे हो तो ।

३४४—आट् से अच् परे हो तो वृद्धिरूप एकादेश होता है ।

३४५—लिङ् के तिप आदि को 'सीयुट' का आगम होता है ।

३४६—लिङ् के 'झ' को 'रन्' आदेश होता है ।

३४७ इटोऽत् ३ । ४ । १०६ ।

लिङादेशस्य इटोऽत् । स्यात् । एधेय । एधेवहि । एधेमहि ।

३४८ सुट् तिथोः ३ । ४ । १०७ ।

लिङस्तथोः सुट् । यलोपः । आर्धधातुकत्वात् सलोपो न । एधिषीष्ट । एधिषीयास्ताम् । एधिषीरन् । एधिषीष्ठाः । एधिषीयास्थाम् । एधिषीध्वम् । एधिषीय । एधिषीवहि । एधिषीमहि । ऐधिष्ट । ऐधिषाताम् ।

३४९ आत्मनेपदेष्वनतः ७ । १ । ५

अनकारात्परस्यात्मनेपदेषु झस्य अदित्यादेशः स्यात् । ऐधिषत । ऐधिष्ठाः । ऐधिषाथाम् । ऐधिढ्वम् । ऐधिषि । ऐधिष्वहि । ऐधिष्महि । ऐधिष्यत । ऐधिष्येताम् । ऐधिष्यन्त । ऐधिष्यथाः । ऐधिष्येथाम् । ऐधिष्यध्वम् । ऐधिष्ये । ऐधिष्यावहि । ऐधिष्यामहि । इति भ्वादयः ॥

२. अथ अदादयः

अद भक्षणे ॥ १ ॥

३५० अदिप्रभृतिभ्यः शपः २ । ४ । ७२ ।

लुक् स्यात् । अत्ति । अत्तः । अदन्ति । अत्सि । अत्थः । अत्थ । अद्मि । अद्वः । अद्मः ।

३५१ लिट्यन्यतरस्याम् २ । ४ । ४० ।

अदो घस्लृ वा स्याल्लिटि । जघास ।

३४७—लिङ् स्थानिक 'इट्' को 'अत्' आदेश होता है ।

३४८—लिङ् सम्बन्धी तकार और थकार को सुट् का आगम होता है ।

३४९—अनकार से परे आत्मनेपदसम्बन्धी 'झ' को अत् आदेश होता है ।

३५०—अदादि-गणपठित धातुओं से परे शप् का लुक होता है ।

३५१—अद को 'घस्लृ' आदेश होता है विकल्प से लिट् पर हो तो ।

३५२ गम-हन-जन-खन-घसां लोपः क्ङित्यनङि ६।४।९८।

एषामुपधाया लोपोऽजादौ क्ङिति, न तु अङि।

३५३ शासि-वसि-घसीनां च ८।३।६०।

इण्कुभ्यां परस्यैषां सस्य षः स्यात्। घस्य चर्त्वम्। क-ष-संयोगे क्षः। जक्षतुः। जक्षुः। जघसिथ। जक्षथुः। जक्ष। जघास, जघस। जक्षिव। जक्षिम। आद आदतुः। आदुः।

३५४ इडत्त्यर्तिव्ययतीनाम् ७।२।६६।

अद्-ऋ-व्येञ् एभ्यस्थलो नित्यमिट् स्यात्। आदिथ, आदथुः, आद। आद, आदिव, आदिम। अत्ता, अत्तारौ, अत्तारः। अत्तासि, अत्तास्थः, अत्तास्थ। अत्तास्मि, अत्तास्वः अत्तास्मः। अत्स्यति, अत्स्यतः, अत्स्यन्ति। अत्स्यसि, अत्स्यथः, अत्स्यथ। अत्स्यामि, अत्स्यावः, अत्स्यामः। अत्तु-अत्तात्, अत्ताम्, अदन्तु।

३५५ हुझल्भ्यो हेर्धिः ६।४।१०१।

होर्झलन्तेभ्यश्च हेर्धिः स्यात्। अद्धि, अत्तात्। अत्तम्। अत्त। अदानि। अदाव।

३५६ अदः सर्वेषाम् ७।३।१००।

अदः परस्यापृक्त-सार्वधातुकस्य अट् स्यात्सर्वमतेन। आदत्, आत्ताम्, आदन्। आदः, आत्तम्, आत्त। आदम्, आद्व, आद्म। अद्यात्, अद्याताम्, अद्युः। अद्याः, अद्यातम्, अद्यात। अद्याम्, अद्याव, अद्याम। अद्यात्, अद्यास्ताम्, अद्यासुः। अद्याः, अद्यास्तम्, अद्यास्त। अद्यासम्, अद्यास्व, अद्यास्म।

३५२—गम्-हन्-जन्-खन् और घस् को उपधा का लोप होता है, अङ् को छोड़कर, अदादि कित्–ङित् परे हो तो।

३५३—इण् कवर्ग से परे इनके स को ष होता है।

३५४—अद्-ऋ-व्येञ् इनसे परे थल् को नित्य इट् होता है।

३५५—हु और झलन्त धातुओं से परे 'हि' को 'धि' होता है।

३५६—अद से परे अपृक्त सार्वधातुक को अट् होता है, सबके मत में।

३५७ लुङ् सनोर्घस्लृ २ । ४ । ३७ ।

अदो घस्लृ स्याल्लुङि सनि च । अघसत् । अघसताम्, अघसन् । अघसः, अघसतम्, अघसत । अघसम्, अघसाव, अघसाम । आत्स्यत्, आत्स्यताम्, आत्स्यन् । आत्स्यः, आत्स्यतम्, आत्स्यत । आत्स्यम्, आत्स्याव, आत्स्याम ।

३५७ पुषादि-द्युतादि-ऌदितः परस्मैपदेषु ३ । १ । ५५ ॥

पुषादेर्द्युतादेर्ऌदितश्च परस्य च्लेरङ् परस्मैपदेषु । अत्र ऌदित्त्वादङ् ।

३५८ सार्वधातुकमपित् १ । २ । ४ ।

अपित् सार्वधातुकं ङिद्वत् स्यात् । अस् भुवि ॥ २ ॥ अस्ति ।

३५९ श्नसोरल्लोपः ६ । ४ । १११ ।

श्नस्यास्तेश्चातो लोपः सार्वधातुके क्ङिति । स्तः । सन्ति । असि । स्थः । स्थ । अस्मि । स्वः । स्मः ।

३६० अस्तेर्भूः २ । ४ । ५२ ।

आर्धधातुके । बभूव । भविता । भविष्यति । अस्तु-स्तात्, स्ताम्, सन्तु ।

३५७—अद् को 'घस्लृ' आदेश होता है लुङ् और सन् परे हो तो ।

३५७—पुषादि द्युतादि और ऌदित् धातु से परे च्लि को अङ् होता है परस्मैपद में ॥

३५८—पित्भिन्न सार्वधातुक ङित्वत् होता है ।

३५९—'श्न' और 'अस्' के अकार का लोप होता है, सार्वधातुक कित्ङित् परे हो तो ।

३६०—अस् को 'भू' आदेश होता है आर्धधातुक की विवक्षा में ।

३६१ ध्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च ६ । ४ । ११९ ।

घोरस्तेश्च एत्वं स्यात् हौ परे अभ्यासलोपश्च । एत्वस्यासिद्धत्वाद्धेर्धिः । श्नसोरित्यल्लोपः । तातङ्पक्षे एत्वं न; परेण तातङा बाधात् । एधि, स्तात्, स्तम्, स्त । असानि, असाव, असाम । लङि—"आ + अस् + त्" इत्यत्र "अस्तिसिचोऽपृक्ते" इति ईट्, आसीत्, आस्ताम्, आसन् । आसीः, आस्तम्, आस्त । आसम्, आस्व, आस्म । स्यात्, स्याताम्, स्युः । स्याः, स्यातम्, स्यात । स्याम्, स्याव, स्याम । भूयात् । अभूत् । अभविष्यत् । शीङ् स्वप्ने ॥ २ ॥

३६२ शीङः सार्वधातुके गुणः ७ । ४ । २१ ।

क्ङिति चेत्यस्यापवादः । शेते । शयाते ।

३६३ शीङो रुट् ७ । १ । ७ ।

शीङः परस्य झादेशस्यातो रुडागमः स्यात् । शेरते । शेषे । शयाथे । शेध्वे । शये । शेवहे ।

३६४ असंयोगात् लिट् कित् १ । २ । ५ ।

असंयोगात् परोऽपित् लिट् कित् स्यात् । शिश्ये, शिश्याते, शिश्यिरे । शिश्यिषे, शिश्याथे, शिश्यिध्वे । शिश्ये, शिश्यिवहे, शिश्यिमहे । शयिता । शयिष्यते । शेताम्, शयाताम्, शेरताम् । शेष्व, शयाथाम्, शेध्वम् । शयै, शयावहै, शयामहै । अशेत, अशयाताम्, अशेरत । अशेथाः, अशयाथाम्, अशेध्वम् । अशये, अशेवहि, अशेमहि । शयीत, शयीयाताम्, शयीरन् । शयीथाः, शयीयाथाम्, शयीध्वम् । शयीय, शयीवहि, शयीमहि । शयिषीष्ट, शयिषीयास्ताम्,

---

३६१—हि परे होने पर घुसंज्ञक तथा अस् धातु को एकार होता है और अभ्यास का लोप होता है ।

३६२—'शीङ्' को गुण होता है सार्वधातुक परे हो तो ।

३६३—शीङ् से परे झ के अत को रुट् का आगम होता है ।

३६४—असंयोग से परे पित्भिन्न लिट् कित् होता है ।

शयिषीरन्। शयिषीष्ठाः, शयिषीयास्थाम्, शयिषीध्वम्। शयिषीय, शयिषीवहि, शयिषीमहि। अशयिष्ट, अशयिषाताम्, अशयिषत अशयिष्ठाः, अशयिषाथाम्, अशयिढ्वम्। अशयिषि, अशयिष्वहि, अशयिष्महि। अशयिष्यत, अशयिष्येताम्, अशयिष्यन्त। अशयिष्यथाः, अशयिष्येथाम्, अशयिष्यध्वम्। अशयिष्ये, अशयिष्यावहि, अशयिष्यामहि। इति अदादयः॥

३. अथ जुहोत्यादयः

हु दानादनयोः॥ १॥

३६५ जुहोत्यादिभ्यः श्लुः २। ४। ७५।

शपः श्लुः स्यात्।

३६६ श्लौ ६। १। १०।

धातोर्द्वे स्तः। जुहोति। जुहुतः।

३६७ अदभ्यस्तात् ७। १। ४।

झस्यात्स्यात्।

३६८ हु-श्नुवोः सार्वधातुके ६। ४। ८७।

हु श्नुवोरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य उवर्णस्य यण् स्यादचि सार्वधातुके। जुह्वति। जुहोषि, जुहुथः, जुहुथ। जुहोमि, जुहुवः, जुहुमः।

३६५—जुहोत्यादिगण-पठित धातुओं से शप् को 'श्लु' (लोप) होता है।

३६६—श्लु होने पर धातु को द्वित्व होता है।

३६७—अभ्यस्त से परे झ को अत् होता है।

३६८—हु धातु और श्नुप्रत्ययान्त जो अनेकाच् अंग, तदवयव असंयोगपूर्वक उवर्ण को यण् होता है, अजादि परे हो तो।

३६९-३७० भी-ही-भृ-हुवां श्लुवच्च ३ । १ । ३९ ।

एभ्यो लिटि आम् वा स्यादामि श्लाविव कार्यं च। जुहवाञ्चकार, जुहाव। जुहुवतुः, जुहुवुः। जुहविथ, जुहुवथुः, जुहुव। जुहाव-जुहव, जुहुविव, जुहुविम। होता। होष्यति। जुहोतु-जुहुतात्, जुहुताम्, जुह्वतु। जुहुधि-जुहुतात्, जुहुतम्, जुहुत। जुहवानि, जुहवाव, जुहवाम अजुहोत्, अजुहुताम्। झेर्जुस्।

३७१ जुसि च ७ । ३ । ८६ ।

इगन्ताङ्गस्य गुणोऽजादौ जुसि। अजुहवुः। अजुहोः, अजुहुतम्, अजुहुत। अजुहवम्, अजुहुव, अजुहुम। जुहुयात, जुहुयाताम्, जुहुयुः। जुहुयाः, जुहुयातम्, जुहुयात। जुहुयाम् जुहुयाव, जुहुयाम।

३७२ अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः ७ । ४ । २५ ।

अजन्ताङ्गस्य दीर्घो यादौ प्रत्यये, न तु कृत-सार्वधातुकयोः। हूयात्। हूयास्ताम्। हूयासुः। हूयाः, हूयास्तम्, हूयास्त। हूयासम्, हूयास्व, हूयास्म। अहौषीत्, अहौष्टाम्, अहौषुः। अहौषः, अहौष्टम्, अहौष्ट। अहौषम्, अहौष्व अहौष्म। अहोष्यत्, अहोष्यताम्, अहोष्यन्। अहोष्यः, अहोष्यतम्, अहोष्यत। अहोष्यम्, अहोष्याव, अहोष्याम। इति जुहोत्यादयः ॥

४. अथ दिवादयः

दिवु क्रीडा-विजिगीषा-व्यवहार-द्युति-स्तुति-मोद-मद-स्वप्न-कान्ति-गतिषु ॥ १ ॥

३६९—भी, ह्री, भृ, और हु धातु से परे आम् होता है लिट् परे रहने पर श्लुनिमित्तक कार्य भी होता है।

३७०—इगन्तांग को गुण होता है अजादि जुस् परे हो तो।

३७१—कृत् और सार्वधातुक को छोड़कर यदि प्रत्यय परे हो तो अजन्तांग को दीर्घ होता है।

३७३ दिवादिभ्यः श्यन् ३ । १ । ६९ ।

शपोऽपवादः ।

३७४ हलि च ८ । २ । ७७ ।

रेफ-वान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घो हलि ।

दीव्यति । दिदेव, दिदिवतुः, दिदिवुः । दिदेविथ, दिदिवथुः, दिदिव । दिदेव, दिदिविव, दिदिविम । देविता ।

देविष्यति । दीव्यतु । अदीव्यत् । दीव्येत् । दीव्यात् । अदेवीत्, अदेविष्टाम्, अदेविषुः । अदेवीः, अदेविष्टम्, अदेविष्ट । अदेविषम्, अदेविष्व, अदेविष्म । अदेविष्यत् ।

जनी प्रादुर्भावे ॥ २ ॥ ई इत् ।

३७५ ज्ञा-जनोर्जा ७ । २ । ७९ ।

अनयोर्जादेशः स्यात् शिति । जायते । लिटि द्वित्वे, हलादिशेषे, जजन् (त) ए, इत्यत्र, "गम-हन जन....." इति उपधालोपे, श्चुत्वेन नस्य ञत्वे, जञ्जोर्ज्ञः । जज्ञे, जज्ञाते, जज्ञिरे । जज्ञिषे, जज्ञाथे, जज्ञिध्वे । जज्ञे, जज्ञिवहे, जज्ञिमहे । जनिता । जनिष्यते । जायताम् । अजायत । जायेत । जनिषीष्ट ।

३७६ दीप-जन-बुध-पूरि-तायि-प्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् ३ । १ । ६१ ।

एभ्यश्च्लेश्चिण् वा स्यात् एकवचने तशब्दे परे ।

३७३—दिवादिगणपठित धातुओं से श्यन् होता है। यह शप् का अपवाद है।

३७४—रेफान्त और वान्त धातु की उपधा के इक् को दीर्घ होता है हल् परे हो तो।

३७५—ज्ञा और जन्-धातु को 'जा' आदेश होता है शित् परे हो तो।

३७६—दीप् आदि धातुओं की च्लि को चिण् विकल्प से होता है एकवचन त-शब्द परे हो तो।

३७७ चिणो लुक् ६ । ४ । १०४ ।

चिणः परस्य तशब्दस्य लुक् स्यात् ।

३७८ जनि-वध्योश्च ७ । ३ । ३५ ।

अनयोरुपधाया वृद्धिर्न स्याच्चिणि ञ्णिति कृति च । अजनि, अजनिष्ट । अजनिषाताम्, अजनिषत । अजनिष्ठाः, अजनिषाथाम्, अजनिढ्वम् । अजनिषि, अजनिष्वहि, अजनिष्महि ।

पद गतौ ॥ ३ ॥ पद्यते । पेदे । पत्ता । पत्सीष्ट ।

३७९ चिण्ते पदः ३ । १ । ६० ।

पदेश्च्लेश्चिण् स्यात्तशब्दे परे । अपादि । अपत्साताम् । अपत्सत । अपत्थाः, अपत्साथाम्, अपद्ध्वम् । अपत्सि, अपत्स्वहि, अपत्स्महि । इति दिवादयः ।

५. अथ स्वादयः

षुञ् अभिषवे ॥ १ ॥

३८० स्वादिभ्यः श्नुः ३ । १ । ७३ ।

शपोऽपवादः । सुनोति । सुनुतः । हुश्नुवोरिति यण् । सुन्वन्ति । सुनुवः । सुनुते । सुन्वाते । सुन्वते । सुनुवहे । सुषाव । सुषुवे । सोता ।

३८१ उतश्च प्रत्ययादसंयोग-पूर्वात् ६ । ४ । १०६ ।

असंयोगपूर्वात् प्रत्ययाद् उतो हेर्लुक् । सुनु । सुनवानि, सुनवै । सुनुयात् । सूयात् ।

३७७—चिण् से परे त-शब्द का लुक् होता है ।

३७८—जन और वध की उपधा को वृद्धि नहीं होती, चिण् और ञित्‌णित्-कृत् परे होने पर ।

३७९—पद-धातु की च्लि को चिण् होता है त-शब्द परे हो तो ।

३८०—स्वादिगण-पठित धातुओं से 'श्नु' होता है । यह शप् का अपवाद है ।

३८१—असंयोगपूर्व प्रत्यय के उकार से परे 'हि' का लुक् होता है ।

३८२ स्तु-सु-धूञ्भ्यः परस्मैपदेषु ७ । २ । ७२ ।

एभ्यस्सिच इट् स्यात् परस्मैपदेषु । असावीत् । असोष्ट । इति स्वादयः ॥

६. अथ तुदादयः

तुद् व्यथने ॥ १ ।

३८३ तुदादिभ्यः शः ३ । १ । ७७ ।

शपोऽपवादः ।

३८४ पुगन्तलघूपधस्य च ७ । ३ । ८६ ।

पुगन्तस्य लघूपधस्य च अङ्गस्येको गुणः स्यात् । इति प्राप्ते । "सार्व-धातुकमपित्" इति ङिद्वद्भावः, "क्ङिति" इति गुणनिषेधः । तुदति, तुदते । तुतोद । तुतोदिथ । तुतुदे । तोत्ता । अतौत्सीत्, अतौत्ताम्, अतौत्सुः । अतौत्सीः, अतौत्तम्, अतौत्त । अतौत्सम्, अतौत्स्व, अतौत्स्म ।

३८५ झलो झलि ८ । २ । २६ ।

झलः परस्य सस्य लोपो झलि । अतुत्त, अतुत्साताम्, अतुत्सत । अतुत्थाः, अतुत्साथाम्, अतुद्ध्वम् । अतुत्सि, अतुत्स्वहि, अतुत्स्महि, इति तुदादयः ॥

७. अथ रुधादयः

रुधिर् आवरणे ॥ १ ॥

३८६ रुधादिभ्यः श्नम् ३ । १ । ७८ ।

शपोऽपवादः ।

३८२—स्तु-सु-धूञ् से परे सिच् को इट् होता है परस्मैपद में ।

३८३—तुदादि-गणपठित धातुओं से 'श' होता है । यह शप् का अपवाद है ।

३८४—पुगन्त और लघूपध अंग के इक् को गुण होता है ।

३८५—झल् से परे स् का लोप होता है झल् परे हो तो ।

३८६—रुधादि-गणपठित धातुओं से 'श्नम्' होता है, शप् को बाध कर ।

३८७ झषस्तथोर्धोऽधः ७ । २ । ४० ।

झषः परयोः तथोर्धः स्यात् न तु दधातेः । रुणद्धि । श्नसोरल्लोपः ।

३८८ झरो झरि सवर्णे ८ । ४ । ३५ ।

हलः परस्य झरो लोपो वा सवर्णे झरि । रुन्धः । रुन्धन्ति । रुणत्सि, रुन्धः, रुन्ध । रुणध्मि, रुन्ध्वः, रुन्ध्मः । रुन्धे, रुन्धाते, रुन्धते । रोद्धा । रोत्स्यति, रोत्स्यते । रुणद्धु-रुन्धात्, रुन्धाम्, रुन्धन्तु । रुन्धि । रुणधानि, रुणधाव, रुणधाम । रुन्धाम्, रुन्धाताम्, रुन्धताम् । रुन्त्स्व । रुणधै, रुणधावहै । रुणधामहै । अरुणत्, अरुणद् । अरुन्धाम् । अरुन्धन् । अरुणत्, अरुन्ध । अरुन्धाताम् । अरुन्धत । अरुन्धाः । रुन्ध्यात्, रुन्धीत ।

३८९ लिङ्सिचावात्मनेपदेषु १ । २ । ११ ।

इक्समीपाद् हलः परौ लिङ्सिचौ कितौ स्तः तङि । रुत्सीष्ट । अरुधत् ।

३९० वद-व्रज-हलन्तस्याचः ७ । २ । ३ ।

एषामचो वृद्धिः सिचि परस्मैपदेषु । अरौत्सीत्, अरौद्धाम्, अरौत्सुः । अरौत्सीः, अरौद्धम्, अरौद्ध । अरौत्सम्, अरौत्स्व, अरौत्स्म । अरुद्ध, अरुत्साताम्, अरुत्सत । अरोत्स्यत्, अरोत्स्यत । इति रुधादयः ॥

८. अथ तनादयः

तनु विस्तारे ॥ १ ॥

३९१ तनादिकृञ्भ्य उः ३ । १ । ७९ ।

३८७—झष् से परे त-थ को 'ध' होता है धा धातु को छोड़कर ।

३८८—हल् से परे झर् का लोप विकल्प से होता है सवर्ण झर् परे हो तो ।

३८९—इक्समीप हल् से परे लिङ्-सिच् कित् होते हैं तङ् परे हो तो ।

३९०—वद, व्रज और हलन्त धातुओं के अच् को वृद्धि होती है परस्मैपद सिच् परे हो तो ।

३९१—तनादि और कृञ् से परे शप् का अपवाद 'उ' प्रत्यय होता है ।

शपोऽपवादः। तनोति, तनुते। ततान, तेने। तनितासि, तनितासे। तनिष्यति, तनिष्यते। तनोतु, तनुताम्। तन्वन्तु। सिपि—तनु-तनुतात्, तनुतम्, तनुत। तनवानि, तनवाव, तनवाम। अतनोत्, अतनुत। तनुयात्, तन्वीत। तन्यात्, तनिषीष्ट। "अतो हलादेः—" इति वा वृद्धिः। अतानीत्, अतनीत्।

३९२ तनादिभ्यस्तथासोः २।४।७९।

तनादेः सिचो वा लुक् स्यात् त-थासोः। इति सिचो लुकि—

३९३ अनुदात्तोपदेश-वनति-तनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति ६।४।३७।

अनुनासिकान्तानामेषां वनतेश्च लोपः स्याद्, झलादौ किति ङिति परे। अतत, अतनिष्ट। अतथाः, अतनिष्ठाः। अतनिष्यत्, अतनिष्यत। इति तनादयः॥

९. अथ क्र्यादयः

डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये॥ १॥

३९४ क्र्यादिभ्यः श्ना ३।१।८१।

शपोऽपवादः। क्रीणाति।

३९५ ई हल्यघोः ६।४।११३।

श्नाऽभ्यस्तयोरात ईत् स्यात् सार्वधातुके क्ङिति हलि, न तु घोः। क्रीणीतः।

३९२—तनादि धातुओं के सिच् का विकल्प से लोप होता है त और थास् परे हो तो।

३९३—अनुनासिकान्त धातु और वन धातु तथा तनोत्यादि धातु के अनुनासिक का लोप होता है झलादि कित्-ङित् परे हो तो।

३९४—क्र्यादिगण की धातुओं से शप् का अपवाद 'श्ना' होता है।

३९५—श्ना और अभ्यस्त के 'आ' को 'ईत्' होता है सार्वधातुक कित्ङित् हल् परे हो तो, 'घु' संज्ञक धातुओं को छोड़ कर।

३९६ श्नाभ्यस्तयोरातः ६ । ४ । ११२ ।

अनयोरातो लोपः क्ङिति सार्वधातुके। क्रीणन्ति। क्रीणासि। क्रीणीथः। क्रीणामि। क्रीणीवः। क्रीणीमः। क्रीणीते। क्रीणाते। क्रीणीते क्रीणीषे। क्रीणाथे। क्रीणीध्वे। क्रीणे। क्रीणीवहे। क्रीणीमहे। चिक्राय।

३९७ अचि श्नु-धातु-भ्रुवां य्वोरियङुवङौ ६ । ४ । ७७ ।

श्नु-प्रत्ययान्तस्य इवर्णोवर्णान्तस्य धातोर्भ्रू इत्यस्य चाङ्गस्य इयङ्-उवङौ स्तोऽजादौ प्रत्यये परे। चिक्रियतुः। चिक्रियुः। चिक्रेथ, चिक्रयिथ। चिक्रिये। क्रेता। क्रेष्यति, क्रेष्यते। क्रीणातु-क्रीणीतात्, क्रीणीताम्। अक्रीणात्, अक्रीणीताम्, अक्रीणन्। अक्रीणः, अक्रीणीतम्, अक्रीणीत। अक्रीणाम्, अक्रीणीव, अक्रीणीम। अक्रीणीत, अक्रीणीताम्, अक्रीणत। अक्रीणीथाः, अक्रीणाथाम्, अक्रीणीध्वम्। अक्रीणि, अक्रीणीवहि, अक्रीणीमहि। क्रीणीयात्, क्रीणीत। क्रीयात्, क्रेषीष्ट।

३९८ सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु ७ । २ । १ ।

इगन्ताङ्गस्य वृद्धिः स्यात् परस्मैपदे सिचि। अक्रैषीत्, अक्रेष्ट। अक्रेष्यत्, अक्रेष्यत। इति क्र्यादयः॥

१०. अथ चुरादयः

चुर स्तेये॥ १॥

३९९ सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल, श्लोक-सेना-लोम-त्वच-वर्म-वर्ण चूर्ण-चुरादिभ्यो णिच् ३ । १ । २५ ।

एभ्यो णिच् स्यात् चूर्णान्तेभ्यो धात्वर्थे, चुरादिभ्यस्तु स्वार्थे।

३९६—श्ना और अभ्यस्त के आकार का लोप होता है कित्-ङित् सार्वधातुक परे हो तो।

३९७—श्नुप्रत्ययान्त, इवर्णान्त, उवर्णान्त जो धातु और "भ्रू" इस अंग को 'इयङ्' और 'उवङ्' आदेश होता है, अजादि प्रत्यय परे हो तो।

३९८—इगन्त अंग को वृद्धि होती है परस्मैपद सिच् परे हो तो।

३९९—सत्यादियों से परे 'णिच्' प्रत्यय होता है।

४०० सनाद्यन्ता धातवः ३ । १ । ३२ ।

सनादयः कमेर्णिङन्ताः प्रत्यया अन्ते येषां ते धातुसंज्ञकाः ।
"सन् क्यच्-काम्यच्-क्यङ्-क्यषोऽथाचारक्विब णिज्यङौ तथा ।
यगायेयङ्णिङश्चेति द्वादशाऽमी सनादयः ।"
तिप्-शबादि गुणायादेशौ । चोरयति ।

४०१ णिचश्च १ । ३ । ७४ ।

णिजन्तादात्मनेपदं स्यात् कर्तृगामिनि क्रियाफले । चोरयते । चोरयामास । चोरयिता । चोर्यात् । चोरयिषीष्ट ।

४०२णि-श्रि-द्रु-स्रुभ्यः कर्तरि चङ् ३ । १ । ४८ ।

ण्यन्तात्छ्र्यादिभ्यश्च च्लेश्चङ् स्यात् कर्त्रर्थे लुङि परे ।

४०३ णेरनिटि ६ । ४ । ५१ ।

अनिडादावार्धधातुके परे णेर्लोपः स्यात् ।

४०४ णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः ७ । ४ । १ ।

चङ्परे णौ यदङ्गं तस्योपधस्य ह्रस्वः स्यात् ।

४०५ चङि ६ । १ । ११ ।

चङि परे अनभ्यासस्य धात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तोऽजादेर्द्वितीयस्य ।

४००—सनादिप्रत्ययान्तों को धातु-संज्ञा होती है ।

४०१—कर्तृगामी क्रियाफल हो तो णिजन्तों से आत्मनेपद होता है ।

४०२—ण्यन्त तथा श्रयादियों से परे च्लि को चङ् होता है कर्त्रर्थ में ।

४०३—अनिडादि आर्धधातुक परे हो तो णि का लोप होता है ।

४०४—चङ् परक णि परे होने पर जो अंग, उसके उपधा को ह्रस्व होता है ।

४०५—चङ् परे होने पर अनभ्यास धात्ववयव एकाच् के प्रथम को द्वित्व होता है आदिभूत अच् हो तो दूसरे को ।

४०६ सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे ७ । ४ । ९३ ।

चङ्परे णौ यदङ्गं तस्य योऽभ्यासो लघुपरः तस्य सनीव कार्यं स्यात् णौ अग्लोपे असति ।

४०७ दीर्घो लघोः ७ । ४ । ९४ ।

लघोरभ्यासस्य दीर्घः स्यात् सन्वद्भावविषये । अचूचुरत्, अचूचुरत ।

इति चुरादयः ।

अथ ण्यन्तप्रक्रिया

४०८ स्वतन्त्रः कर्ता १ । ४ । ५४ ।

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात् ।

४०९ तत्प्रयोजको हेतुश्च १ । ४ । ५५ ।

कर्तुः प्रयोजको हेतुसंज्ञः कर्तृसंज्ञश्च स्यात् ।

४१० हेतुमति च ३ । १ । २६ ।

प्रयोजकव्यापारे प्रेषणादौ वाच्ये धातोर्णिच् स्यात् । भवन्तं प्रेरयति भावयति ।

४११ ओः पुयण्ज्यपरे ७ । ४ । ८० ।

सनि परे यदङ्गं तदवयवाभ्यासोकारस्य इत्स्यात् पवर्ग-यण्-

४०६—चङ्परक णि परे होने पर जो अंग, उसके अवयव लघुपरक अभ्यास को सन्वद्भाव होता है यदि णि परे होने पर अक् का लोप न हुआ हो ।

४०७—लघु अभ्यास को दीर्घ होता है सन्वद्भाव विषय में ।

चुरादि समाप्त

अथ ण्यन्तप्रक्रिया

४०८—क्रिया में स्वतन्त्रता से विवक्षित अर्थ की 'कर्ता' संज्ञा होती है ।

४०९—कर्ता का प्रयोजक हेतुसंज्ञक और कर्तृसंज्ञक होता है ।

४१०—प्रयोजक के व्यापार (प्रेषणा, अन्वेषणा और अध्येषणा) के वाच्य होने पर धातु से णिच् होता है ।

४११—सन्परक जो अंग, उसके अवयव अभ्यास के उकार को इकारादेश होता है, अवर्णपरक पवर्ग, यण् जकार परे हो तो ।

जकारेष्ववर्णपरेषु परतः।

भूधातोर्ण्यन्ताल्लुङि अडागमे च्लेश्चङि "णिचि-अच आदेशो न द्वित्वे कर्तव्ये" इति पूर्वं वृद्ध्यभावे 'भू' इत्यस्य द्वित्वे अभ्यासकार्ये (भस्य बत्वे ह्रस्वे च) अबु भू + इ + अ त्, इति स्थितौ (परस्य) वृद्धौ आवादेशे 'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः' इति ह्रस्वे सन्वद्भावे अभ्यासोकारस्य इत्वे (णिलोपे) 'दीर्घो लघोः' इति दीर्घः—

—अबीभवत्। ष्ठा गतिनिवृत्तौ।

४१२ अर्ति-ह्री-व्ली-री-क्नूयी-क्ष्माय्यातां पुङ् णौ ७।३।३६।

स्थापयति=तिष्ठन्तं प्रेरयति। लुङि—

अस्थाप् + इ + अ त् इति स्थितौ द्वित्वेऽभ्यासकार्ये 'अस्थाप् इ अत्' इत्यत्र अभ्यासस्य चर्त्वे उपधाह्रस्वे, सन्वद्भावे—

४१२ सन्यतः ७।४।७९॥

अभ्यासस्यात इत् स्यात् सनि। इति अभ्यासस्य इत्वे, षत्वे, ष्टुत्वे च 'अतिष्ठप् इ अत्' स्थितौ—

४१३ तिष्ठतेरित् ७।४।५।

उपधाया इदादेशः स्याच्चङ् परे णौ। इति उपधाया इत्वे, णिलोपे च। अतिष्ठिपत्।

घट चेष्टायाम्।

४१४ मितां ह्रस्वः ६।४।९२।

घटादीनां ज्ञपादीनां च ह्रस्वः। (घटादयो ज्ञपादयश्च मितः)। घटयति। अजीघटत्। ज्ञप ज्ञाने ज्ञापने च। ज्ञपयति। अजिज्ञपत्।

इति ण्यन्तप्रक्रिया।

४१२—अर्ति, ह्री आदि धातुओं को पुक् का आगम होता है णि परे हो तो।

४१२—अभ्यास के अकार को इत् होता है सन् परे रहते॥

४१३—स्था धातु की उपधा को इकार आदेश होता है चङ्परक णि परे होने पर।

४१४—घटादि और ज्ञपादि धातुओं की उपधा को ह्रस्व होता है चङ्परक णि परे हो तो।

अथ सन्नन्तप्रक्रिया

४१५ धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ३ । १ । ७।

इषिकर्मण इषिणैककर्तृकाद्धातोः सन् प्रत्ययो वा स्यादिच्छायाम् । पठ व्यक्तायां वाचि ।

४१६ सन्यङोः ६ । १ । ९ ।

सन्नन्तस्य यङन्तस्य च प्रथमस्यैकाचो द्वे स्तोऽजादेस्तु द्वितीयस्य । पठितुमिच्छति—पिपठिषति । कर्मणः किम्—गमनेनेच्छति । समानकर्तृकात्किम्—शिष्याः पठन्त्वितीच्छति गुरुः । वा ग्रहणाद्वाक्यमपि । लुङ्सनोर्घस्लृ ।

(४१७-४१८) ४१९ सस्यार्धधातुके ७ । ४ । १६ ।

सस्य तः स्यात्सादावार्धधातुके । अत्तुमिच्छति—जिघत्सति ।

४२० अज्झनगमां सनि ६ । ४ । १६ ।

अजन्तानां हन्तेरजादेशगमेश्च दीर्घो झलादौ सनि ।

४२१ इको झल् १ । २ । ९ ।

इगन्ताज्झलादिः सन् कित् स्यात् । कर्तुमिच्छति—चिकीर्षति ।

४१५—इच्छा के कर्मीभूत और इच्छा के साथ एक कर्ता वाले धातु से इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय होता है विकल्प से ।

४१६—सनन्त और यङन्त धातुओं के प्रथम एकाच् अवयव को द्वित्व होता है, अजादि धातुओं के द्वितीय एकाच् अवयव को द्वित्व होता है ।

४१७—४१८—उपदेशावस्था में जो एकाच् धातु, उससे परे आर्धधातुक को इट् नहीं होता ।

४१९—सकार को तकारादेश होता है सादि आर्धधातुक परे हो तो ।

४२०—अजन्त धातु, हन् और अजादेश गम् धातु को दीर्घ होता है, झलादि सन् परे हो तो ।

४२१—इगन्त धातु से परे झलादि सन् कित् होता है ।

४२२ ॠत इद्धातोः ७ । १ । १०० ।

ॠदन्तस्य धातोरङ्गस्य इत्स्यात् ।

४२३ सनि ग्रह गुहोश्च ७ । २ । १२ ।

ग्रहेर्गुहेरुगन्ताच्च सन इण् न स्यात् । बुभूषति ।

इति सन्नन्ताः ।

अथ भावकर्मप्रक्रिया

४२४ भावकर्मणोः १ । ३ । १३ ।

लस्यात्मनेपदम् ।

४२५ सार्वधातुके यक् ३ । १ । ६७ ।

धातोर्यक् भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके । भावः = क्रिया । सा च भावार्थकलकारेणानूद्यते । युष्मदस्मद्भ्यां सामानाधिकरण्याभावात् प्रथमः पुरुषः । तिङ्वाच्यक्रियाया अद्रव्यरूपत्वेन द्वित्वाद्यप्रतीतेर्न द्विवचनादि, किन्त्वेकवचनमेवोत्सर्गता । त्वया मया अन्यैश्च भूयते । बभूवे ।

४२६ स्य-सिच्-सीयुट्-तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झन-ग्रह-दृशां वा चिण्वदिट् च ६ । ४ । ६२ ।

उपदेशे योऽच् तदन्तानां हनादीनां च चिणीवाङ्गकार्यं वा स्यात्स्यादिषु भावकर्मणोर्गम्यमानयोः स्यादीनामिडागमश्च । चिण्वद्भावपक्षेऽय-

---

४२२—दीर्घ ॠकारान्त धातु के अंग को 'इत्' होता है, वह रपरक होता है।

४२३—ग्रह, गुह और उगन्त धातु से स को इट् नहीं होता ।

४२४—भाव और कर्म में धातु के लकार के स्थान में आत्मनेपद होता है ।

४२५—धातु से यक् होता है, भावकर्मवाची सार्वधातुक परे हो तो ।

४२६—उपदेश में जो अच्, तदन्त जो धातु और हन-ग्रह-दृश धातु, इनको चिण् के समान अंगकार्य विकल्प से होता है स्य-सिच्-सीयुट् और तास् परे हो तो, भावकर्म गम्यमान होना चाहिये, स्यादियों को इडागम भी होता है ।

मिट्। चिण्वद्भावाद् वृद्धिः। भाविता, भविता। भाविष्यते, भविष्यते। भूयताम्। अभूयत। भूयेत। भाविषीष्ट, भविषीष्ट।

४२७ चिण् भावकर्मणोः ३। १। ६६।

च्लेश्चिण् स्याद्भावकर्मवाचिनि तशब्दे परे। अभावि, अभाविष्यत, अभविष्यत। अकर्मकोऽप्युपसर्गवशात्सकर्मकः—अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण त्वया मया च। अनुभूयेते। अनुभूयन्ते। त्वमनुभूयसे। अहमनुभूये। अन्वभावि। अन्वभाविषाताम्, अन्वभविषाताम्।

४२८ तनोतेर्यकि ६। ४। ४४।

आकारान्तादेशो वा स्यात्। तायते, तन्यते।

४२९ तपोऽनुतापे च ६। १। ६५।

तपश्च्लेश्चिण् न स्यात्कर्मकर्तर्यनुतापे च। अन्वतप्त पापेन। घुमास्थेतीत्वम्। दीयते। धीयते। ददे।

४३० आतो युक् चिण्कृतोः ७। ३। ३३।

आदन्तानां युगागमः स्याच्चिणि ञ्णिति कृति च। दायिता, दाता। दायिषीष्ट, दासीष्ट। अदायि। अदायिषाताम्। भञ्जो धातुः, भज्यते।

४३१ भञ्जेश्च चिणि ६। ४। ३३।

नलोपो वा स्यात्। अभाजि, अभञ्जि। लम्भ्यते।

४२७—च्लि के स्थान में चिण् होता है भाव-कर्मवाची त-शब्द परे हो तो।

४२८—तन् धातु को आकार अन्तादेश होता है विकल्प से यक् परे हो तो।

४२९—तप् धातु की च्लि को चिण् नहीं होता कर्म कर्ता और अनुताप अर्थ में।

४३०—आकारान्त धातुओं को युक् का आगम होता है चिण्, ञित्, णित्, कृत् परे हो तो।

४३१—भञ्ज धातु के न का लोप होता है विकल्प से चिण् परे हो तो।

४३२ विभाषा चिण्णमुलोः ७ । १ । ६९ ।

लभेर्नुमागमो वा स्यात् । अलम्भि, अलाभि ।

इति भावकर्मप्रक्रिया ।

अथ कृदन्ताः

धातोरित्यधिकारः ।

४३३ कृदतिङ् ३ । १ । ९३ ।

अत्र धात्वधिकारे तिङ्भिन्नः प्रत्ययः कृत्सञ्ज्ञः स्यात् ।

४३४ कृत्याः ७ । १ । ९५ ।

ण्वुल्तृचावित्यतः प्राक् कृत्यसंज्ञाः स्युः ।

४३५ कर्तरि कृत् ३ । ४ । ६७ ।

कृत्प्रत्ययः कर्तरि स्यात् । इति प्राप्ते ।

४३६ तयोरेव कृत्य-क्त-खलर्थाः ३ । ४ । ७० ।

एते भावकर्मणोरेव स्युः ।

४३७ तव्यत्तव्यानीयरः ३ । १ । ९६ ।

धातोरेते प्रत्ययाः स्युः । एधितव्यम् एधनीयं त्वया, भावे—औत्सर्गिकमेकवचनं क्लीबत्वञ्च । कर्मणि—चेतव्यश्चयनीयो वा धर्मस्त्वया ।

४३२—लभ धातु को नुम् का आगम होता है विकल्प से चिण् णमुल् परे हो तो ।

४३३—तीसरे अध्याय के धात्वधिकार में तिङ् से भिन्न प्रत्यय 'कृत्' संज्ञक होता है ।

४३४—"ण्वुल्-तृचौ" सूत्र से पूर्व-पूर्व सभी प्रत्यय 'कृत्य' संज्ञक कहलायेंगे ।

४३५—कृत् प्रत्यय कर्ता में होते हैं ।

४३६—कृत्य, क्त और खलर्थ प्रत्यय भाव और कर्म में ही होंगे ।

४३७—तव्यत् तव्य और अनीयर् धातु से होते हैं ।

४३८ अचो यत् ३ । ४ । ९७ ।

अजन्ताद्धातोर्यत् स्यात् । "सार्वधातुकार्धधातुकयोः इति गुणः । चेयम् ।

४३९ ईद्यति ६ । ४ । ६५ ।

यति परे । आत ईत्स्यात् । देयम् । ग्लेयम् ।

४४० कर्मण्यण् ३ । २ । १ ।

कर्मण्युपपदे । धातोरण्प्रत्ययः स्यात् । कुम्भं करोतीति–कुम्भकारः ।

४४१ चरेष्टः ३ । २ । १६ ।

अधिकरणे उपपदे । कुरुषु चरतीति–कुरुचरः ।

४४२ क्त-क्तवतू निष्ठा १ । १ । २६ ।

एतौ निष्ठासंज्ञौ स्तः ।

४४३ निष्ठा ३ । २ । १०२ ।

भूतार्थवृत्तेर्धातोर्निष्ठा स्यात् । तत्र "तयोरेवेति" भावकर्मणोः क्तः, "कर्तरि कृदि"ति कर्तरि क्तवतुः । उकावितौ । स्नातं मया । स्तुतस्त्वया विष्णुः । विश्वं कृतवान् विष्णुः ।

४४४ लटः शतृ-शानचावप्रथमा-समानाधिकरणे ३ । २ । १२४ ।

अप्रथमान्तेन समानाधिकरणे लट एतौ वा स्तः । शबादि । पचन्तं चैत्रं पश्य ।

४३८—अजन्त धातुओं से 'यत्' प्रत्यय होता है ।

४३९—यत् परे हो तो आकार को ईत् आदेश होता है ।

४४०—कर्म उपपद हो तो धातु से अण् प्रत्यय होता है ।

४४१—अधिकरण उपपद हो तो चर धातु से 'ट' प्रत्यय होता है ।

४४२—क्त और क्तवतु को 'निष्ठा' कहते हैं ।

४४३—भूतार्थवृत्ति धातु से 'निष्ठा' प्रत्यय होता है ।

४४४—अप्रथमान्त के साथ समानाधिकरण होने पर लट् के स्थान में शतृ और शानच् प्रत्यय होते हैं ।

४४५ आने मुक् ७ । २ । ८२ ।

अदन्ताङ्गस्य मुगागमः स्यादाने परे । पचमानं चैत्रं पश्य ।

अथ उत्तरकृदन्तम्

४४६ भावे ३ । ३ । १८ ।

सिद्धावस्थापन्ने धात्वर्थे वाच्ये धातोर्घञ् । पाठः ।

४४७ एरच् ३ । ३ । ५६ ।

इवर्णान्तादच् । गुणे, अयादेशः । चयः । जयः ।

४४८ नपुंसके भावे क्तः ३ । ३ । ११४ ।

४४९ ल्युट् च ४ । ३ । ११४ ।

हसितम् । हसनम् ।

४५० हलश्च ३ । ३ । १२१ ।

हलन्ताद् घञ् । रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः । अपमृज्यतेऽनेन व्याध्यादिरित्यपामार्गः (पुठकण्डा) ।

४५१ ईषद्दुस्सुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ३ । ३ । १३६ ।

करणाधिकरणयोरिति निवृत्तम् । एषु दुःखसुखार्थेषूपपदेषु खल् । तयोरेवेति भावे कर्मणि च । कृच्छ्रे—दुष्करः कटो भवता । अकृच्छ्रे—ईषत्करः । सुकरः ।

४४५—'आन' परे हो तो अदन्तांग को मुक् का आगम होता है ।

४४६—सिद्धावस्थापन्न धात्वर्थ हो तो धातु से 'घञ्' प्रत्यय होता ।

४४७—इवर्णान्त धातु से 'अच्' प्रत्यय होता है ।

४४८—नपुंसक भाव में 'क्त' प्रत्यय होता है ।

४४९—और 'ल्युट्' प्रत्यय होता है ।

४५०—हलन्त धातु से 'घञ्' होता है ।

४५१—ईषत्-दुस्-सु उपपद हों तो कृच्छ्र और अकृच्छ्रार्थ में खल् होता है ।

४५२ समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ३ । ४ । २१ ।

समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानाद्धातोः क्त्वा स्यात् । भुक्त्वा व्रजति । द्वित्वमतन्त्रम् = अविवक्षितम् । भुक्त्वा पीत्वा व्रजति ।

४५३ न क्त्वा सेट् १ । १ । १८ ।

सेट् क्त्वा किन्न स्यात् । शयित्वा । सेट् किम्—कृत्वा ।

४५४ समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ७ । १ । ३७ ।

अव्ययपूर्वपदेऽनञ्समासे क्त्वो ल्यबादेशः स्यात् ।

४५५ ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् ६ । १ । ७१ ।

प्रकृत्य । अनञ् किम्—अकृत्वा । इति उत्तरकृदन्तप्रकरणम् ।

इति श्रीपूर्वपञ्चाम्बु-प्रान्त-मध्यवर्ति-होश्यारपुर-मण्डलान्तर्गत—
"जेजों-" नगर-निवासि पं० श्रीरामनारायणशर्म तनूजन्म-
श्री पं० विश्वनाथ-शास्त्रि-प्रभाकर-सङ्कलितं
प्रारम्भिकपाणिनीयं सम्पूर्णम् ।

ॐ तत्सत्

४५२—समान-कर्तृक धात्वर्थों में, पूर्व काल में वर्तमान धातु से 'क्त्वा' होता है ।

४५३—सेट् क्त्वा 'कित्' नहीं होता ।

४५४—नञ् समास-भिन्न अव्ययपूर्वपद समास में क्त्वा को 'ल्यप्' होता है ।

४५५—ह्रस्व को तुक् का आगम होता है पित्-कृत् परे रहते ।

इति प्रारम्भिक-पाणिनीय-भाषार्थ-समाप्त ।

हमारे महत्त्वपूर्ण छात्रोपयोगी प्रकाशन

[मूल पाठ के साथ संस्कृत-हिन्दी टीका, भूमिका, टिप्पणी एवं अन्य छात्रोपयोगी सामग्री सहित]

अभिषेक-नाटक (भासकृत) (संस्कृत-हिन्दी टीका) : सं० मोहनदेव पंत २०
अमरुशतकम् : अमरुक १६
उत्तररामचरित : आनन्दस्वरूप (अजिल्द) ३५; (सजिल्द) ५०
कथासरित्सागर : सोमदेव—सं० जगदीशलाल शास्त्री (अ) १५०; (स) २५०
कादम्बरी : मोहनदेव पन्त (पूर्वार्द्ध) (अजिल्द) ५०; (सजिल्द) ७०
(उत्तरार्द्ध) (अजिल्द) ४८; (सजिल्द) ६०
काव्यप्रकाश (प्रथम भाग) : रामसागर त्रिपाठी (अ) १२०; (स) २००
किरातार्जुनीयम् (१—४ सर्ग) : जनार्दन शास्त्री पाण्डेय १६.५०
कुमारसंभव (१-२ सर्ग) : जगदीशलाल शास्त्री ८
चन्द्रालोक (संस्कृत-हिन्दी टीका) : सुबोधचन्द्र पन्त २२
चित्रकाव्यकौतुकम् (संस्कृत) : रामरूप पाठक, सं० प्रेमलता शर्मा २५
दशकुमारचरित (सम्पूर्ण) : सुबोधचन्द्र पन्त एवं विश्वनाथ झा २५
दशरूपक (संस्कृत-हिन्दी टीका) : बी० एन० पाण्डेय ४८
ध्वन्यालोक (संस्कृत-हिन्दी टीका) (तृतीय व चतुर्थ उद्योत) :
रामसागर त्रिपाठी (अजिल्द) ३५; (सजिल्द) ५०
पंचतन्त्र (सम्पूर्ण) : श्यामाचरण पाण्डेय (अजिल्द) ५५; (सजिल्द) ६०
प्रतिमानाटक (संस्कृत-हिन्दी टीका) : श्रीधरानन्द शास्त्री २८
प्रसन्नराघव : रमाशंकर त्रिपाठी १५
मालविकाग्निमित्र : स० संसारचन्द्र एवं मोहनदेव पन्त ३८
मृच्छकटिकम् (संस्कृत-हिन्दी टीका) : रमाशंकर त्रिपाठी
(अजिल्द) ५०; (सजिल्द) ६०
मेघदूत : संसारचन्द्र (अजिल्द) १८; (सजिल्द) ३०
विक्रमोर्वशीय : रामविलास त्रिपाठी १५
वेणीसंहार : रमाशंकर त्रिपाठी २२
शिशुपालवध (१—४ सर्ग) : जनार्दन शास्त्री पाण्डेय २२.५०
साहित्यदर्पण : शालिग्राम शास्त्री (अजिल्द) ५०; (सजिल्द) ८०
सौन्दरनन्द (अश्वघोष कृत) : अनु० सूर्यनारायण चौधरी २८
स्वप्नवासवदत्त : जयपाल विद्यालंकार ४४
हितोपदेश (मित्रलाभ) : विश्वनाथ शर्मा ६

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली वाराणसी पटना बंगलौर मद्रास

मूल्य : रु० १